प्रथम संस्करण
मानिनी यश मुक्तामाला
प्रथम पुष्प
www.MaanMandir.org
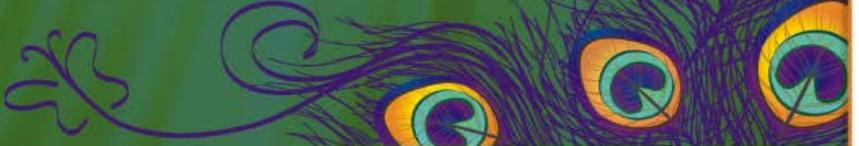
मानिनी यश मुक्तामाला

प्रथम पुष्प

कबहि कृपा की ढार ढरोगी ।
आरत दीन पर्यो हूँ रज में,
निज पद रज मम शीश धरोगी ॥

२४-अप्रैल-२०१५
श्री मान मंदिर सेवा संस्थान
गह्वर वन, बरसाना, मथुरा, उत्तर प्रदेश

अंतर्वस्तु

प्रकाशकीय

अनन्तकाल के भोग-वासनाओं के संस्कार, उसमें भी कलिकाल के भयावह स्वरुप की मार, भला साधारण जीव कैसे कामना-शून्य होकर अनन्त सुख के मूल जगदाराध्य भगवान् को प्राप्त कर सकता है। जीव में उतनी सामर्थ्य भी नहीं है कि वह अपने बल पर योग, जप, तप, स्वाध्यायादि करके आत्मकल्याण का साधन अपना सके। बस एक ही आश्रय है, जिससे जीव सहजता व सरलता से अनायास असंभव को संभव कर सकता है; वह है किसी **निष्किञ्चन महापुरुष की शरणागति और उनका सत्संग**। ब्रज भूमि में पिछले ६२ वर्षों से अखण्ड ब्रजवास कर रहे **ब्रज के परम विरक्त संत पूज्य श्री रमेश बाबा जी महाराज,** जिनकी अहैतुकी कृपा न केवल ब्रजवासियों को अपितु करोड़ों श्रद्धालुओं को सुलभ हुई। जागतिक वासनाओं को निर्मूल कर सतत् भगवान् के रूप, लीला, गुणों का गान व चिंतन कराते हुए उन्होंने अपने नित्य सत्संग से सभी को अभिसिंचित किया है। उन्ही महापुरुष के नित्य सत्संग के किञ्चित् ज्ञानबिन्दुओं की एक किरण जीव के त्रिताप को शमन करने के लिए पर्याप्त होगी। वह किरण **'मानिनी यश मुक्तामाला'** प्रथम पुष्प के रूप में प्रकाशित है।

श्री रमेश बाबा जी महाराज

गुण-गरिमागार, करुणा-पारावार, युगललब्ध-साकार इन विभूति विशेष गुरुप्रवर पूज्य बाबाश्री के विलक्षण विभा-वैभव के वर्णन का आद्यन्त कहाँ से हो यह विचार कर मंद मति की गति विथकित हो जाती है।

विधि हरि हर कवि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥

(रा.बा.का.दोहा.३क)

पुनरपि

जो सुख होत गोपालहि गाये।
सो सुख होत न जप तप कीन्हे कोटिक तीरथ न्हाये।

(सू. वि. प.)

अथवा

रस सागर गोविन्द नाम है रसना जो तू गाये।
तो जड़ जीव जनम की तेरी बिगड़ी हू बन जाये ॥
जनम-जनम की जाये मलिनता उज्ज्वलता आ जाये ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित - ब्र. भा. मा.से संग्रहीत)

कथनाशय इस पवित्र चरित्र के लेखन से निज कर व गिरा पवित्र करने का स्वसुख व जनहित का ही प्रयास है।

अध्येतागण अवगत हों इस बात से कि यह लेख, मात्र सांकेतिक परिचय ही दे पायेगा, अशेष श्रद्धास्पद (बाबाश्री) के विषय में। सर्वगुणसमन्वित इन दिव्य विभूति का प्रकर्ष आर्ष जीवन चरित्र कहीं लेखन-कथन का विषय है?

"करनी करुणासिन्धु की मुख कहत न आवै"

(सू.वि. प.)

मलिन अन्तस् में सिद्ध संतों के वास्तविक वृत्त को यथार्थ रूप से समझने की क्षमता ही कहाँ, फिर लेखन की बात तो अतीव दूर है तथापि इन लोक-लोकान्तरोत्तर विभूति के चरितामृत की श्रवणाभिलाषा ने असंख्यों के मन को निकेतन कर लिया अतएव सार्वभौम महत् वृत्त को शब्दबद्ध करने की धृष्टता की।

तीर्थराज प्रयाग को जिन्होंने जन्मभूमि बनने का सौभाग्य-दान दिया। माता-पिता के एकमात्र पुत्र होने से उनके विशेष वात्सल्यभाजन रहे। ईश्वरीययोजना ही मूल हेतु रही आपके अवतरण में। दीर्घकाल तक अवतरित दिव्य दम्पति स्वनामधन्य श्री बलदेव प्रसाद शुक्ल (शुक्ल भगवान् जिन्हें लोग कहते थे) एवं श्रीमती हेमेश्वरी देवी को संतान सुख अप्राप्य रहा, संतान प्राप्ति की इच्छा से कोलकाता के समीप तारकेश्वर में जाकर आर्त पुकार की, परिणामतः सन् १९३० पौष मास की सप्तमी को रात्रि ९:२७ बजे कन्यारत्न श्री तारकेश्वरी (दीदी जी) का अवतरण हुआ अनन्तर दम्पत्ति को पुत्र कामना ने व्यथित किया। पुत्र प्राप्ति की इच्छा से कठिन यात्रा कर रामेश्वर पहुँचे, वहाँ जलान्न त्याग कर शिवाराधन में तल्लीन हो गये, पुत्र कामेष्टि महायज्ञ किया। आशुतोष हैं रामेश्वर प्रभु, उस तीव्राराधन से प्रसन्न हो तृतीय रात्रि को माता जी को सर्वजगन्निवासावास होने का वर दिया। शिवाराधन से सन् १९३८ पौष मास कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि को अभिजित मुहूर्त मध्याह्न १२ बजे अद्भुत बालक का ललाट देखते ही पिता (विश्व के प्रख्यात व प्रकाण्ड ज्योतिषाचार्य) ने कह दिया –

"यह बालक गृहस्थ ग्रहण न कर नैष्ठिक ब्रह्मचारी ही रहेगा, इसका प्रादुर्भाव जीव-जगत के निस्तार निमित्त ही हुआ है।"

वही हुआ, गुरु-शिष्य परिपाटी का निर्वाहन करते हुए शिक्षाध्ययन को तो गये किन्तु बहु अल्प काल में अध्ययन समापन भी हो गया।

"अल्पकाल विद्या बहु पायी"

गुरुजनों को गुरु बनने का श्रेय ही देना था अपने अध्ययन से। सर्वक्षेत्र कुशल इस प्रतिभा ने अपने गायन-वादन आदि ललित कलाओं से विस्मयान्वित कर दिया बड़े-बड़े संगीतमार्तण्डों को। प्रयागराज को भी स्वल्पकाल ही यह सानिध्य सुलभ हो सका "तीर्थी कुर्वन्ति तीर्थानि" ऐसे अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न असामान्य पुरुष का। अवतरणोद्देश्य की पूर्ति हेतु दो बार भागे जन्मभूमि छोड़कर ब्रजदेश की ओर किन्तु माँ की पकड़ अधिक मजबूत होने से सफल न हो सके। अब यह तृतीय प्रयास था, इन्द्रियातीत स्तर पर एक ऐसी प्रक्रिया सक्रिय हुई कि तृणतोड़नवत् एक झटके में सर्वत्याग कर पुनः गति अविराम हो गई ब्रज की ओर।

चित्रकूट के निर्जन अरण्यों में प्राण-परवाह का परित्याग कर परिभ्रमण किया, सूर्यवंशमणि प्रभु श्रीराम का यह वनवास स्थल पूज्यपाद का भी वनवास स्थान रहा। "स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे" इस भावना से निर्भीक घूमे उन हिंसक जीवों के आतंक संभावित भयानक वनों में।

आराध्य के दर्शन को तृषान्वित नयन, उपास्य को पाने के लिए लालसान्वित हृदय अब बार-बार पाद-पद्मों को श्रीधाम बरसाने के लिए ढकेलने लगा, बस पहुँच गए बरसाना। मार्ग में अन्तस् को झकझोर देने वाली अनेकानेक विलक्षण स्थितियों का सामना किया। मार्ग का असाधारण घटना संघटित वृत्त यद्यपि अत्यधिक रोचक, प्रेरक व पुष्कल है तथापि इस दिव्य जीवन की चर्चा स्वतन्त्र रूप से भिन्न ग्रन्थ के निर्माण में ही सम्भव है अतः यहाँ तो संक्षिप्त चर्चा ही है। बरसाने में आकर तन-मन-नयन आध्यात्मिक मार्गदर्शक के अन्वेषण में तत्पर हो गए। श्रीजी ने सहयोग किया एवं निरंतर राधारससुधा सिन्धु में अवस्थित, राधा के परिधान में सुरक्षित, गौरवर्णा की शुभ्रोज्ज्वल कान्ति से आलोकित-अलंकृत युगल सौख्य में आलोडित, नाना पुराणनिगमागम के ज्ञाता, महावाणी जैसे निगूढ़ात्मक ग्रन्थ के प्राकट्यकर्ता "अनन्त श्री सम्पन्न श्री श्री प्रियाशरण जी महाराज" से शिष्यत्व स्वीकार किया।

ब्रज में भामिनी का जन्म स्थान बरसाना, बरसाने में भामिनी की निज कर निर्मित गहवर वाटिका "बीस कोस वृन्दाविपिन पुर वृषभानु उदार, तामें गहवर वाटिका जामें नित्य विहार" और उस गहवरवन में भी महासदाशया मानिनी का मन-भावन मान-स्थान श्री मानमंदिर ही मानद (बाबाश्री) को मनोनुकूल लगा। मानगढ़, ब्रह्माचलपर्वत की चार शिखरों में से एक महान शिखर है। उस समय तो यह बीहड़ स्थान दिन में भी अपनी विकरालता के कारण किसी को मंदिर प्रांगण में न आने देता। मंदिर का आंतरिक मूल स्थान चोरों को चोरी का माल छिपाने के लिए था। चौराग्रगण्य की उपासना में इन विभूति को भला चोरों से क्या भय?

भय को भगाकर भावना की – "तस्कराणां पतये नमः" – चोरों के सरदार को प्रणाम है, पाप-पंक के चोर को भी एवं रकम-बैंक के चोर को भी। ब्रजवासी चोर भी पूज्य हैं हमारे, इस भावना से भावित हो द्रोहार्हणों (द्रोह के योग्य) को भी कभी द्रोहदृष्टि से न देखा, अद्वेष्टा के जीवन्त स्वरुप जो ठहरे। फिर तो शनैः-शनैः विभूति की विद्यमत्ता ने स्थल को जाग्रत कर दिया, अध्यात्म की दिव्य सुवास से परिव्याप्त कर दिया।

जग-हित-निरत इस दिव्य जीवन ने असंख्यों को आत्मोन्नति के पथ पर आरूढ़ कर दिया एवं कर रहे हैं। श्रीमन् चैतन्यदेव के पश्चात् कलिमलदलनार्थ नामामृत की नदियाँ बहाने वाली एकमात्र विभूति के सतत् प्रयास से आज ३२ हजार गाँवों में, प्रभातफेरी के माध्यम से नाम निनादित हो रहा है। ब्रज के कृष्ण लीला सम्बंधित दिव्य वन, सरोवर, पर्वतों को सुरक्षित करने के साथ-साथ सहस्त्रों वृक्ष लगाकर सुसज्जित भी किया। अधिक पुरानी बात नहीं है, आपको स्मरण करा दें, सन् २००९ में "राधारानी ब्रजयात्रा" के दौरान ब्रजयात्रियों को साथ लेकर स्वयं ही बैठ गये आमरण अनशन पर, इस संकल्प के साथ कि जब तक ब्रज पर्वतों पर हो रहे खनन द्वारा आघात को सरकार रोक नहीं देगी, मुख में जल भी नहीं जायेगा। समस्त ब्रजयात्री भी निष्ठापूर्वक अनशन लिए हुए हरिनामसंकीर्तन करने लगे और उस समय जो उद्दाम गति से नृत्य-

गान हुआ, नाम के प्रति इस अटूट आस्था का ही परिणाम था कि १२ घंटे बाद ही विजयपत्र आ गया। दिव्य विभूति के अपूर्व तेज से साम्राज्य सत्ता भी नत हो गयी। गौवंश के रक्षार्थ गत् ६ वर्ष पूर्व माता जी गौशाला का बीजारोपण किया था, देखते ही देखते आज उस वट बीज ने विशाल तरु का रूप ले लिया, जिसके आतपत्र (छाया) में आज 35,000 गायों का मातृवत् पालन हो रहा है। संग्रह परिग्रह से सर्वथा परे रहने वाले इन महापुरुष की भगवन्नाम ही एकमात्र सरस सम्पत्ति है।

यही करुणा करना करुणामयी मम अंत होय बरसाने में ।
पावन गह्वरवन कुञ्ज निकट रज में रज होय मिलूँ ब्रज में ॥

(बाबा श्री द्वारा रचित – ब्र.भा.मा. से संग्रहीत)

परम विरक्त होते हुए भी बड़े-बड़े कार्य संपादित किये, इन ब्रज संस्कृति के एकमात्र संरक्षक, प्रवर्द्धक व उद्धारक ने, गत षष्टि (६०) वर्षों से ब्रज में क्षेत्रसन्यास (ब्रज के बाहर न जाने का प्रण) लिया एवं इस सुदृढ़ भावना से विराज रहे हैं। ब्रज, ब्रजेश व ब्रजवासी ही आपका सर्वस्व हैं। असंख्यों आपके सान्निध्य-सौभाग्य से सुरभित हुये, आपके विषय में जिनके विशेष अनुभव हैं, विलक्षण अनुभूतियाँ हैं, विविध विचार हैं, विपुल भाव साम्राज्य है, विशद अनुशीलन हैं, इस लोकोत्तर व्यक्तित्व ने विमुग्ध कर दिया है विवेकियों का हृदय। वस्तुतः कृष्णकृपालब्ध पुमान् को ही गम्य हो सकता है यह व्यक्तित्व। रसोदधि के जिस अतल-तल में आपका सहज प्रवेश है, यह अतिशयोक्ति नहीं कि रस ज्ञाताओं का हृदय भी उस तल से अस्पृष्ट ही रह गया।

आपकी आंतरिक स्थिति क्या है, यह बाहर की सहजता, सरलता को देखते हुए सर्वथा अगम्य है। आपका अन्तरंग लीलानंद, सुगुप्त भावोत्थान, युगल मिलन का सौख्य इन गहन भाव-दशाओं का अनुमान आपके सृजित साहित्य के पठन से ही संभव है। आपकी अनुपम कृतियाँ – श्री रसिया रासेश्वरी, स्वर वंशी के शब्द नूपुर के, ब्रजभावमालिका, भक्तद्वय चरित्र इत्यादि हृदयद्रावी भावों से भावित कृतियाँ हैं।

आपका त्रैकालिक सत्संग अनवरत चलता ही रहता है। साधक-साधु-सिद्ध सबके लिए सम्बल हैं आपके त्रैकालिक रसार्द्रवचन। दैन्य की सुरभि से सुवासित अद्भुत असमोर्ध्व रस का प्रोज्ज्वल पुंज है यह दिव्य रहनी, जो अनेकानेक पावन आध्यात्मास्वाद के लोभी मधुपों का आकर्षण केंद्र बन गयी। सैकड़ों ने छोड़ दिए घर-द्वार और अद्यावधि शरणागत हैं। ऐसा महिमान्वित-सौरभान्वित वृत्त विस्मयान्वित कर देने वाला स्वाभाविक है।

रस-सिद्ध-संतों की परम्परा इस ब्रजभूमि पर कभी विच्छिन्न नहीं हो पायी। श्रीजी की यह गह्वर वाटिका जो कभी पुष्पविहीन नहीं होती, शीत हो या ग्रीष्म, पतझड़ हो या पावस, एक न एक पुष्प तो आराध्य के आराधन हेतु प्रस्फुटित ही रहता है। आज भी इस अजरामर, सुन्दरतम, शुचितम, महत्तम, पुष्प (बाबाश्री) का जग स्वस्तिवाचन कर रहा है। आपके अपरिसीम उपकारों के लिए हमारा अनवरत वंदन, अनुक्षण प्रणति भी न्यून है।

प्रार्थना है अवतरित प्रीति-प्रतिमा विभूति से कि निज पादाम्बुजों का अनुगमन करने की शक्ति हम सबको प्रदान करें।

आपकी प्रेम प्रदायिका, परम पुनीता पद-रज-कणिका को पुनः-पुनः प्रणाम है।
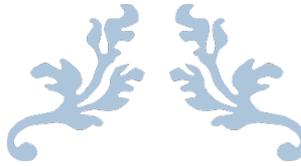
अन्याश्रय के रहते अनन्याश्रय असम्भव

आशा जब मनुष्य भगवान् से इतर कहीं और करता है तो भगवान् से विमुख हो जाता है अर्थात् उसकी शरणागति नष्ट हो जाती है। श्रीमद्भागवत में कथा आती है। दत्तात्रेय जी ने एक पिंगला नाम की वेश्या को गुरु बनाया। वह वेश्या रात भर जागती रही कि अब हमारा प्रेमी आयेगा। दत्तात्रेय जी अवधूत (महान विरक्त) थे, एक बार वह घूमते हुए उसके बगीचे में आकर रुक गये। पिंगला अपने समय की बड़ी प्रसिद्ध वेश्या थी। उस बगीचे में सामने ही उसकी कोठी थी, वह रात भर खिड़की पर आती थी कि अभी हमारा प्रेमी आया है कि नहीं और देखकर लौट जाती थी, लेट जाती थी। कोई आने वाला नहीं आया, बहुत रात तक वह जागती रही। एक क्षण भी नहीं सोयी, जब सबेरा सा हो गया, उसने जान लिया अब कोई नहीं आयेगा तो गई और पलंग पर गिरकर सो गयी। दत्तात्रेय जी यह सब देख रहे थे तो उन्होंने शिक्षा ली कि संसार में सबसे बड़ा दुःख है 'आशा'।

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।
यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिङ्गला ॥

(भा. ११/८/४४)

आशा ही सबसे बड़ा दुःख है अर्थात् इससे बड़ा दुःख न था, न है और न होगा। सबसे बड़ा सुख क्या है? निराशा। सुख के साथ भी 'परम' शब्द का प्रयोग किया और दुःख के साथ भी 'परम' शब्द का प्रयोग किया। संसार का सबसे बड़ा दुःख है 'आशा' और सबसे बड़ा सुख है 'निराशा'। पिंगला ने जब अपने पास आने वाले प्रेमी की आशा का त्याग किया, तब उसे सुख मिला और जाकर के सो गई।

हम लोग गुरु बनकर के तथा आश्रम बनाकर, शिष्यों को अन्याश्रय सिखाते हैं यानी भगवान् से विमुख कर देते हैं। श्रीराम जी ने भी यही

कहा –

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा ।
जोग न मख जप तप उपवासा ॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई ।
जथा लाभ संतोष सदाई ॥
मोर दास कहाइ नर आसा ।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ॥

(रा.मा. उत्तर. ४६)

हम लोग इसी मुसीबत में फँस जाते हैं, भले ही माला फेरते हैं, जप करते हैं। उपरोक्त चौपाई छोटी सी है लेकिन हमलोग इसे समझ नहीं पाते। भक्ति में बहुत मेहनत करने की जरूरत नहीं है। लोग योग करते हैं, यज्ञ करते हैं, जप करते हैं, उपवास करते हैं, निर्जला व्रत करते हैं लेकिन भक्ति लेशमात्र भी नहीं आती क्योंकि स्वभाव में कुटिलता है, सरलता नहीं है, यथालाभ संतोष नहीं है। संतोष कैसे होगा, आश्रम चलाना है। संतोष करेंगे तो सोचते हैं – आश्रम कैसे चलेगा? संतोष नहीं है तो क्या करेंगे, जीवाशा करेंगे और कोई आदमी बड़ा दान करता है तो उसके पास पहुँच जाते हैं क्योंकि लोभ का चश्मा लगा है आँखों पर। 'लोभ' माने असंतोष, यथालाभ संतोष नहीं है। इस विपत्ति को हम नहीं समझ पाते और जीवन भर हरि विमुख बने रहते हैं। संतोष नहीं है तो दर-दर घूमेंगे, लोभ का चश्मा लगा हुआ है तो छोटा आदमी भी बड़ा दिखाई देता है। संसार में सब छोटे हैं, सब वासना के भिखमंगे हैं, बड़ा कोई नहीं है।

दर-दर डोलत दीन है, जन-जन जाचन जाय ।
दिये लोभ चश्मा चखनि, लघुहू बड़ो जनाय ॥

आशा इधर-उधर गयी और भक्ति नष्ट हो गई। शरणागति के छः लक्षण होते हैं। जहाँ प्रेम है, उसी के अनुकूल संकल्प करना, उससे प्रतिकूल को छोड़ देना, विश्वास रखना – यही हमारी रक्षा करेगा, रक्षक

के रूप में उसी का वरण किया जाये और उसी को सब कुछ समर्पण कर दिया जाये और सब कुछ देने के बाद कार्पण्य (दीनता) आ जाए। ऐसा नहीं कि हमने कुछ दान दिया और ऐहसान जता रहे हैं महाराज! तुमको दस हजार रुपये दान में दिये। यह कार्पण्य नहीं है। देने वाला सोचता है कि हमने दिया है तो कार्पण्य नहीं है। हम अगर आशा कर रहे हैं इधर-उधर तो हमारी वरणीयता नष्ट हो गई क्योंकि हमने रक्षक के रूप में किसी दूसरे को वरण किया। इसलिए भगवान् ने कहा है –

मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥

(रा.मा. उत्तर. ४६)

भगवान् कहते हैं अगर किसी मनुष्य की आशा करोगे तो मुझमें तुम्हारा विश्वास कहाँ है? नाम है गोपालदास, गोविन्ददास लेकिन काम सब गड़बड़ है, आशा कर रहे हो संसारियों की। जिसको किसी की आशा नहीं है वह भक्त है। द्रौपदी भगवान् की बहुत प्रिय थी लेकिन जब तक उसने 'नर आशा' की भगवान् नहीं आये। यह बड़ा भारी उदाहरण है। 'नर आशा' जब तक है तब तक हम लोग भगवान् से दूर हैं परन्तु आजकल हमलोग गुरु बनकर शिष्यों को यही सिखाते हैं। प्रह्लाद जी ने कहा कि माँ-बाप की आशा नहीं करो, नर आशा किसी के लिए भी की जाए गलत है।

हमारे गुरुदेव ने कहा था कि मधूकरी (भिक्षान्न) बड़ी शुद्ध होती है, तुम जीवन भर भिक्षा माँगना और उसी का भगवान् को भोग लगाना, यह मत सोचना कि यह भगवान् को भोग लगाने लायक नहीं है, वस्तुतः तो अन्याश्रय की वस्तु भगवान् स्वीकार नहीं करते। परीक्षा, कसौटियाँ होती हैं। धैर्य रखना चाहिए। जिसके अन्दर धैर्य नहीं है, वह भजन नहीं कर सकता। 'तरोरपि सहिष्णुना' सहिष्णु नहीं है तो भजन नहीं कर पायेगा। आश्रय तो एकमात्र भगवान् का ही रहना चाहिए। किसी जीव की आशा नहीं करनी चाहिए। जीव की आशा करोगे तो चाहे तुम देवता

हो, कोई भी हो, नष्ट हो जाओगे। तुलसीदासजी ने एक पद में कहा है –

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो ।
हरि-पद-बिमुख लह्यो न काहु सुख, सठ! यह समुझ सबेरो ॥
बिछुरे ससि-रबि मन नैननितें, पावत दुख बहुतेरो ।
भ्रमत श्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥
जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो ।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति, श्रुति संदेहु निबेरो ।
'तुलसिदास' सब आस छाँड़ि करि, होहु राम को चेरो ॥

(तुलसी वि. प. ८७)

अरे ! मूर्ख मन, मेरी बात तो तू सुन, भगवान् के चरणों से विमुख होने पर आज तक किसी को सुख नहीं मिला। नीच, मनुष्य शरीर में यह बात तू क्यों नहीं समझ लेता, फिर रात आ जायेगी, मौत आ जायेगी, चौरासी लाख योनियाँ आ जायेंगी, तब क्या समझेगा ? यह मनुष्य योनि का सवेरा हुआ है, इसमें समझ ले। भगवान् से विमुख होने पर सुख नहीं मिलता है। सूर्य, चन्द्रमा को भी सुख नहीं मिला, फिर मनुष्य की क्या चलाई? चन्द्रमा और सूर्य भगवान् से बिछुड़ गये हैं। पुरुष सूक्त में वर्णन आता है कि भगवान् के मन से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ और नेत्रों से सूर्य। लेकिन जबसे वे भगवान् से बिछुड़े गये हैं, तब से ये दोनों दुःखी हैं। हम लोग तो मक्खी-मच्छर भी नहीं हैं। इनको क्या दुःख है? रात-दिन ये आकाश में चक्कर लगाते रहते हैं, थके हुए और उसमें भी राहु आता है, कभी-कभी ग्रहण कर लेता है, उसके डर से भागते रहते हैं और तो क्या, गंगा जी की भी यही हालत है। देवनदी गंगा बड़ी पवित्र हैं। आकाश में आकाशगंगा रूप से हैं, पृथ्वी पर भागीरथी गंगा के रूप से और पाताल में भोगवती गंगा के रूप से हैं। तीनों लोकों में इनका यश है, लेकिन जबसे ये भगवान् के चरणों से बिछुड़ी हैं, इनका बहना बंद नहीं हुआ है। तीनों लोक में बह रही हैं क्योंकि भगवान् से बिछुड़ गयी हैं, विमुख हो गयी हैं। आज तक गंगा जी

का बहना नहीं मिटा। सच्चा भजन करो। वेदों में यह कहा गया है कि भगवान् का आश्रय छोड़ोगे तो कभी सुख नहीं मिलेगा। आश्रय कैसे होता है? संसारी आशाएँ छोड़ दो, इस तरह से दास बनो, नहीं तो चाहे तुम सूर्य बन जाओ, चन्द्रमा बन जाओ, गंगा बन जाओ, तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। आज हम लोग संसार की आशा किये बैठे हैं। ये सेठ आया है, कुछ दे जायेगा। वह आया है, कुछ दे जायेगा। बस दान, चन्दा-चिट्ठा, समाज में यही मचा रखा है। सारा समाज हम लोगों ने विमुख कर दिया। इसीलिए आशा केवल भगवान् की करनी चाहिए। विश्वास केवल भगवान् का रखना चाहिए –

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास॥

आशा इधर-उधर गयी और भक्ति नष्ट हो गयी। भक्ति करने की शक्ति भगवान् ही देता है, नहीं तो जीव में क्षमता नहीं है। हरिराम व्यास जी ने कहा है कि हम लोग संसारियों से बात करते हैं। समधी आया, ससुर आया, इन्हें आदर से बिठाते हैं और भक्तों का आदर नहीं करते। जब भक्तों से प्यार नहीं है तो भगवान् तुमको सौ जन्म में भी नहीं मिलेंगे। भगवान् ने गीता में कहा –

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गी.१०/९)

जो हमारे भक्त हैं, जिनका चित्त मुझमें है और मुझमें जिनका प्राण व इन्द्रियाँ हैं, वे परस्पर एक-दूसरे को बोध देते हैं, भगवच्चर्चा करते हैं, संतुष्ट होते हैं, वे भक्त हैं। वाल्मीकि जी ने श्रीराम जी से कहा था –

राम भगत प्रिय लागहिं जेही।
तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥

(रा.मा. अयो. १३१)

जिसको आपके भक्तों से प्रेम है, उसके हृदय में जाकर रहो। जो भक्तों में भेदबुद्धि करता है, घृणा करता है, वहाँ भगवान् नहीं आएँगे, चाहे सौ जन्म तुम साधु बनकर घूमते रहो।
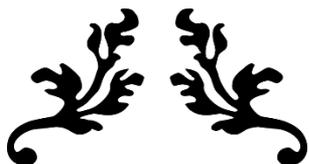
अब हौं कासौं बैर करौं

भक्ति का मूल है 'दैन्य'। सबसे पहले चैतन्य महाप्रभु जी ने यही शिक्षा दी –

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्त्तनीयः सदा हरिः ॥

(शिक्षाष्टक – ३)

तिनका से भी छोटे बनो फिर और बातें स्वयमेव आ जायेंगी – सहिष्णुता, अमानिता, मानदेनता, भगवान् का कीर्तन आदि।

तुम निरपराध भजन करते जाओ, भगवान् तुम्हारी जिम्मेदारी अपने-आप लेंगे, स्वयं हृदय में आकर तुम्हारे मैल को दूर कर हृदय को स्वच्छ करेंगे, योगक्षेम धारण करेंगे। चिन्तन अनन्य अर्थात् अपराध शून्य होना चाहिए। कोई त्रुटि हो जायेगी, कोई पाप बन जायेगा तो उसे भगवान् का स्मरण अपने-आप नष्ट कर देगा –

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते
सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां
स्यात् पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥

(भा. ६/३/२६)

सर्वात्मना अर्थात् अनन्य शरणागति से भजन होगा तो कोई अपराध होने पर वह भजन ही उसे नष्ट कर देगा। यमराज व उनके दूत तुम्हें नहीं छू सकेंगे। यमराज बोले – 'हमारा दण्ड उनके लिए नहीं है। हमारे लोक में वे लोग कभी भी दण्ड पाने के लिए नहीं आ सकते। यदि दैववश पाप हुआ भी तो उसे भगवान् का गुणगान ही नष्ट कर देगा, यमलोक में उनके आने की कोई जरूरत नहीं है।' पाप की सम्भावना कई कारण से होती है, कभी-कभी दयावश भी सम्भावना हो जाती है;

जैसे जड़भरत जी, उन्होंने हिरन पर दया की थी और दया करते-करते उनका भजन छूट गया, भजन छूटा और मनुष्य ईशरिक्त हुआ। ईशरिक्त होने पर तो अर्जुन और हनुमान आदि भी गिर पड़े।

यदि तुम किसी प्राणी का अपराध नहीं कर रहे हो तो तुम्हारी सभी परिस्थितियाँ सफल हो जायेंगी, सिद्ध हो जायेंगी; नहीं तो सब परिस्थितियाँ विपरीत हो जायेंगी, जैसे रावण के पास कितनी बड़ी सेना थी लेकिन कोई काम नहीं आया, सब असफल रहे क्योंकि –

बिफल होहिं सब उद्यम ताके ।
जिमि परद्रोह निरत मनसा के ॥

(रा.मा. लंका. ९२)

सब उद्यम चाहे व्यापार है, चाहे नौकरी है, चाहे घर-बार है, सब विफल हो जाते हैं यदि जरा भी द्रोह आ जाता है। द्रोह क्या है? प्राणी समझता नहीं, समझना भी नहीं चाहता। किसी में अभाव करना द्रोह है, किसी का नुक्सान सुनकर हर्षित होना द्रोह है, किसी की निन्दा करना द्रोह है, इन सबसे जो छूट जाता है, उसके सारे उद्यम सफल हो जाते हैं।

प्रह्लाद जी ने अपने पिता से कहा था कि पिताजी ! किसी के बारे में पाप (अभाव) न मैं सोचता हूँ, न कहता हूँ, न करता हूँ। पहले मनुष्य सोचता है, फिर कहता है, फिर करता है। जैसे हम सोच रहे हैं कि यह आदमी क्रोधी है, पहले मन में विचार आया, जब मन में विचार आया तब हमने उसकी बुराई की, निन्दा की और लोगों से कहा कि यह आदमी क्रोधी है, फिर क्रिया की, उससे नहीं बोलेंगे, मुँह फेर लेंगे। पहले मनुष्य मन में पाप लाता है, फिर कहता है, फिर करता है। तीन परिस्थितियाँ होती हैं, प्रह्लाद जी कहते हैं – तीनों क्रिया मैं नहीं करता, अतः दुःख न तो मुझे कभी स्पर्श कर पाया और न कर पायेगा। इस बात की गारण्टी है। सबमें भगवान् हैं। किसी में दोष देखना, भगवान् में दोष देखना है। किसी की निन्दा करोगे, भगवान् की निन्दा है। किसी

से द्रोह करोगे तो भगवान् से द्रोह करना है। दूसरों में कमी देखकर मनुष्य अपने से द्रोह करता है। तुम अपने भीतर ही भगवान् को सोचो (अनन्य स्मरण करो), तब तुम्हारा कोई उद्यम संसार में बेकार नहीं जायेगा, दुःख कभी नहीं आयेगा, आग तुमको जला नहीं पायेगी, पानी डुबा नहीं पायेगा, बीमारियों की हिम्मत क्या है कि कोई भी तुमको छू सके, वे आती हैं तो हवा की तरह चली जाती हैं।

प्रह्लाद जी ने कहा था – पिताजी ! आप या अन्य कोई भी मुझे नहीं मार सकते।

सारा संसार मिलकर भी भक्त की क्षति नहीं कर सकता। जैसे मनुष्य अपने दोषों को कभी नहीं सोचता, अपने दोषों को कभी नहीं कहता, प्रह्लाद जी कहते हैं – उसी प्रकार मैं प्राणी मात्र के प्रति भाव रखता हूँ। पाप का हेतु मनुष्य का मन होता है। पाप का आगमन तो मेरे भीतर हो ही नहीं सकता क्योंकि पाप का हेतु ही मेरे पास नहीं है। पाप तुम्हारे भीतर रहता है अभाव रूप बनकर। अभाव है तो नित्यधाम वैकुण्ठ से भी नीचे आ जाओगे। (श्रीमद्भागवत ३/१५/३४) सनकादिक ने जय-विजय को शाप दे दिया कि तुम्हारे में अभाव दृष्टि आ गयी है, अतः नीचे जाओ। वैकुण्ठ में कोई चोरी नहीं करता, छिनारी (व्यभिचार) नहीं करता, कोई किसी प्रकार का अत्याचार नहीं करता वहाँ, लेकिन अभाव रूपी पाप वहाँ भी रहता है। अभाव भीतर रहता है, बाहर से हम लोग भले बने रहते हैं। अभाव ही पाप है। भगवान् का एक नाम तार सकता है, एक नाम का स्मरण कर लो, सुन लो, कह लो – सब पाप नष्ट हो जाता है लेकिन कब? जब अभाव न रहे तब।

दान, धर्म आदि सत्कर्म भक्तापराध से नहीं बचा सकते। भक्तापराधी को कभी कोई शान्त नहीं कर सकता, शरण नहीं दे सकता। भक्तापराधी अकेले नष्ट नहीं होता, बहुतों को लेके नष्ट होता है, जो उसका पक्ष करते हैं, वे भी मारे जाते हैं। भक्तापराध मनुष्य को समूल नष्ट कर देता है। भक्तापराध सारी सल्तनत को नष्ट कर देता है।

सफलता-असफलता अपने हाथ में है। जब मनुष्य द्रोह करता है तो उसके सारे उद्यम विफल हो जाते हैं, सब धंधा, नौकरी-चाकरी, परिवार, सब चौपट हो जाते हैं। आज हमारा (साधु-वैष्णव) समाज क्यों श्रीहीन है? क्योंकि साधु समाज, वैष्णव समाज, सब एक-दूसरे से द्रोह करते हैं, इसलिए हमारे सारे उद्यम विफल हैं। एक भक्त के अपराध से सारा साम्राज्य नष्ट हो जाता है। अगर किसी के अन्दर अभाव नहीं है तो संसार की कोई शक्ति उसे हरा नहीं सकती। प्रह्लाद जी ने कहा था – न मैं पाप सोचता, न कहता, न करता हूँ और आज हम जैसे लोग दिन-रात पाप सोचते हैं कि वो ऐसा, वो वैसा, बस यही चर्चा करते हैं। स्नेह नहीं है, प्रेम नहीं है, इसीलिए यह संसार आपत्ति ग्रस्त है। सारा समाज भक्तापराध में डूब गया है, अब प्रभु की इच्छा से ही कल्याण होगा।

काल से मुक्त होने का रास्ता

भगवान् की शरण में जीव चला जाए तो काल कुछ नहीं कर सकता क्योंकि भगवान् काल के भी काल हैं। सच्चे मन से कोई उनकी शरण पकड़ ले तो काल को जीत लेगा –

जो घट अन्तर हरि सुमिरै ।
ताकौ काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरै ॥

काल कुछ नहीं कर सकता, काल की कुछ नहीं चलेगी, भगवान् की शरण में जाओ। देखा जाता है कि भक्त लोग भी मरते हैं। मरते तो हैं, यह संसार का नियम है –

आया है सो जाएगा राजा रंक फकीर ।
एक सिंहासन चढ़ चला दूजे बंधा जंजीर ॥

एक सिंहासन पर जाएगा यानी मरने के बाद उसको अविनाशी पद मिल जाएगा और एक जंजीर में बाँधा जाएगा। इसीलिए भगवद्भक्त को मनुष्य नहीं समझो। जीव जब भगवान् का चिन्तन करता है, तब काल शक्ति से छूट जाता है, उसकी उम्र तक बढ़ जाती है। भागवत में लिखा है –

आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः ।
उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥

(भा. ४/११/२१)

जैसे ही मनुष्य भजन करता है वैसे ही उसकी आयु बढ़ती है। अकाल मृत्यु टल जाती है। लगभग १०० वर्ष की उम्र हर व्यक्ति को मिली है, लेकिन मनुष्य जो पाप या अपराध करता है चाहे वे इस जन्म के हों या पिछले जन्म के, वे उसको पहले ही मार डालते हैं। केवल भगवान् की भक्ति वाला अकाल मृत्यु से बच जाता है। भक्ति करो,

अकाल मृत्यु से बचोगे, व्याधियों से बचोगे। श्रीमद्भागवत में यह बात कही गयी है –

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ।
भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥

(भा. ३/२२/३७)

यह संसार माया है, इसको देखकर जो इसे सत्य मानता है, वह पशु है। माँ-बाप सब पशु हैं, बच्चा बड़ा हुआ तो सोचते हैं इसका विवाह हो, यह भोग भोगे, इसको रोटी-पानी मिल जाए, बस इससे आगे कुछ नहीं सोचते। कोई माँ-बाप नहीं सोचता कि हमारा बच्चा संसार रूपी कारागार से मुक्त हो जाए। इसलिए चाहे माँ-बाप हैं, वे पशु हैं –

लोकांश्च लोकानुगतान् पशूंश्च
हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ।
परस्परं त्वद्गुणवादसीधु-
पीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥

(भा. ३/२१/१७)

कर्दम जी बोले – इन पशुओं को छोड़ दो। सारा संसार छोड़ दो। ये सब तुमको संसार में फँसने का मार्ग बताएँगे। ऋषभ भगवान् ने कहा है कि जो संसार में फँसाता है उसे छोड़ दो; माँ को छोड़ दो, बाप को छोड़ दो, गुरु को छोड़ दो, अगर गुरु भी चन्दा-चिट्ठे में फँसाता है, भवसागर से पार होने की शिक्षा नहीं देता तो उसे भी छोड़ दो –

गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्या-
न्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥

(भा. ५/५/१८)

वह गुरु, गुरु नहीं है; वह स्वजन, स्वजन नहीं हैं; वह माँ, माँ नहीं

है; वह पिता, पिता नहीं है; वह दैव, दैव नहीं है; वह पति, पति नहीं है; जो मृत्यु से छूटने का रास्ता नहीं बताता है। जो भगवान् की शरणागति न बतावे, उसको छोड़ दो; यह भगवान् की आज्ञा है। भगवान् श्रीराम ने कहा है –

एहि तन कर फल बिषय न भाई ।
स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई ॥

(रा.मा. उत्तर. ४४)

सभी प्रकार के सांसारिक-विषयों को छोड़ दो, यह शरीर देवताओं तक को नहीं मिलता, देवता आदि भी तरसते हैं इस मनुष्य शरीर को पाने के लिए। इस मनुष्य शरीर को पाने के बाद सब कामनाएँ छोड़कर भगवान् की शरण पकड़ लो। कबीरदास जी ने तो यहाँ तक कहा है *'साधो यह मुर्दों का गाँव ।'* यहाँ कोई जिन्दा नहीं है, सब मुर्दे बैठे हैं, ऐसा क्यों कहा? क्योंकि सब मुर्दे रहते हैं अर्थात् भक्तिहीन लोग रहते हैं। शिव जी ने कहा है –

जिन्ह हरिभगति हृदयँ नहिं आनी ।
जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥

(रा.मा. बाल ११३)

जिसमें भगवान् की भक्ति नहीं है तो वह जीता हुआ मुर्दा है, इसलिए यह पशुओं का गाँव है, इसको छोड़ दो; इसको छोड़ने के बाद ही मनुष्य भगवान् की शरण में जा सकता है। चाहे माँ है, बाप है, इनकी आसक्ति करोगे तो ये फँसा लेंगे। जीते जी अमृत पियो। वह अमृत कहाँ मिलता है? भगवद्भक्तों-संतों के पास।

भक्तिहीन मानव-देह पशुवत् है। जैसे – गधे, कुत्ते शरीर धारण करते हैं, उनका जीवन केवल भोगमय होता है। तुमको इसलिए मनुष्य बनाया गया है कि अमृत पियो, अमृत क्या है? भगवान् का गुणगान। अगर कहो कि क्या खायेंगे, क्या पियेंगे, यदि दिन-रात भजन करेंगे? अरे तुम जानते नहीं हो, जिसने भक्ति रूपी अमृत पी लिया तो उसके

देह-धर्म का निर्वाह अपने-आप होगा। *'प्रणत कुटुंब पाल रघुराई।'* भगवान् 'शरणागत जनों' का पालन-पोषण करते हैं।
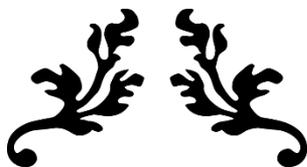
भगवद्प्रीति में बाधक – देह-गेहादि रति

साधन करना आवश्यक है, लेकिन 'मैं कर रहा हूँ' यह साधन का अहम् नहीं करना चाहिए। यह बड़ा कठिन है क्योंकि हर कर्म में मनुष्य का अहम् छिपा रहता है। मैं देख रहा हूँ, मैं जा रहा हूँ, मैं खा रहा हूँ, मैं पी रहा हूँ, मैं सुन रहा हूँ– हर क्रिया में अहम् रहता है। जीव अहम् रहित हो जाये तो न पाप लगेगा, न बन्धन लगेगा, कुछ नहीं लगेगा। भगवान् ने गीता में कहा –

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥

(गी. १८/१७)

जिसमें अहम् नहीं है और जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं है, 'लिप्त' अर्थात् कहीं चिपकी नहीं है, आसक्त नहीं है; वह यदि सारे संसार की हत्या भी कर दे, फिर भी उसे पाप नहीं लगेगा। इसलिए अहम् से रहित होकर कर्म करना चाहिए।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

(गी. ३/१९)

आसक्ति छोड़ी और असक्त बन गये। असक्त और आसक्त में एक मात्रा का अंतर है। 'आसक्त' माने चारों ओर से मन फँस गया, सम्पूर्ण रूप से मन फँस गया और 'असक्त' माने बिल्कुल भी नहीं फँसा। दोनों सुनने में एक से लगते हैं, लेकिन जमीन-आसमान का फर्क है। भगवान् बोले – अगर तुम असक्त हो, कहीं तुम्हारा मन नहीं चिपका है तो तुम परमात्मा को प्राप्त हो जाओगे। परमतत्त्व भगवान् से मिल जाओगे और कहीं थोड़ी सी भी आसक्ति है तो तुम चौरासी लाख योनियों में भटकोगे। गीता में इसी बात को कहा गया –

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥

(गी. १३/२१)

हम जन्म लेते हैं, मरते हैं, क्यों? क्योंकि 'प्रकृति' अर्थात् शरीर, मन, बुद्धि, इन्द्रियों आदि में आसक्त हैं। प्रकृति में स्थित होकर (आसक्त होकर) तब मनुष्य प्रकृति के गुणों अर्थात् पदार्थों का भोग करता है। इसके बिना भोग सम्भव नहीं है। बिना आसक्ति के भोग नहीं होता। एक छोटा बच्चा भोग जानता ही नहीं तो भोगेगा क्या? जानता नहीं तो आसक्त नहीं होगा, जब जान जाता है तब आसक्त होता है। 'गुणसंग' माने गुणासक्ति। गुणासक्ति ही सद् और असद् योनियों में जन्म लेने का कारण है। जन्म लेता है और मरता है, इसका कारण गुणासक्ति है। गुणासक्ति क्या है? ये सारा संसार गुणमय है। संसार में कहीं भी आसक्ति है, गुणमय है क्योंकि सारा संसार गुणमय है और 'गुणों से छूटना' माने संसार से छूटना। भगवान् ने स्वयं कहा है गीता में –

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥

(गी. ७/१४)

केवल मेरी शरणागति ही तुम्हें छुड़ा सकती है। ये माया गुणमयी है, बिना गुणों के माया नहीं है, इस माया के पार जाना कठिन है, 'दुरत्यय' माने बहुत कठिन है। आसक्ति रहने से 'मनुष्य का आश्रय' जहाँ आसक्ति होगी वहाँ चला जाता है।

देखो, बच्चा कष्ट में माँ-माँ चिल्लाता है, क्यों? क्योंकि माँ में आसक्ति है, अतः माँ को बुला रहा है। जहाँ चिपकता है मन, वहीं का आश्रय लेता है। हम लोग कष्ट में, दुःख में किसी का सहारा लेते हैं। माँ का, बाप का, स्त्री का, पति का सहारा क्यों लेते हैं? क्योंकि आसक्ति है वहाँ पर। इन सबका सहारा लेने से ही भगवान् का आश्रय छूट जाता है। इसलिए भगवान् ने कहा – 'मेरा ही आश्रय करो, तो माया पार हो

जाओगे।' श्रीमद्भागवत में प्रह्लाद जी ने भी यही बात कही है –

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट-
स्तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥

(भा. ७/९/१९)

बच्चा पैदा होते ही अपनी माँ का आश्रय करता है, फिर बाप का करता है। प्रह्लाद जी ने कहा – बालक की शरण माँ-बाप नहीं हैं परन्तु जन्म से ही आदत बिगड़ जाती है। हम लोग जीवों का सहारा लेते हैं। माँ-बाप बैरी नहीं हैं, हित करते हैं लेकिन जीव ही तो हैं अतः भगवान् की शरणागति के बाधक हैं। प्रह्लाद जी ने अपने पिता का भी आश्रय नहीं लिया। माँ कयाधू भक्त थी, उसका आश्रय भी नहीं लिया। माँ समझाती थी कि बेटा, पिता की हाँ-में-हाँ मिला, कष्ट क्यों पाता है? लेकिन प्रह्लाद जी ने यह बात नहीं मानी। उन्होंने अपने पिता से कहा – पिताजी ! जब तक शरीर है, तब तक कष्ट मिलेगा क्योंकि तुमने संसार को पकड़ा है –

तत्साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ।
हित्वाऽऽत्मपातं गृहमन्धकूपं
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥

(भा. ७/५/५)

इसलिए घर-परिवार, माता-पिता, स्त्री-पति, बेटा-बेटी आदि अंधकूप हैं, इनमें आसक्ति करना आत्मपात (अपना नाश) है, इस आसक्ति को छोड़ दो, यानी घर छोड़ दो। घर छोड़कर जंगल में चले जाना चाहिए तथा भगवान् का आश्रय पकड़ना चाहिए। प्रह्लाद जी बोले – पिताजी ! हम जो मेरा-तेरा करते हैं, वह माया के कारण से है। माया से बुद्धि मोहित हो गयी है –

स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ।
अन्य एष तथान्योऽहमिति भेदगतासती ॥

(भा. ७/५/१२)

जब भगवान् कृपा करते हैं, तब पशुबुद्धि नष्ट हो जाती है। मेरा-तेरा यही पशु बुद्धि है। मैं जो जंगल में जाकर भजन करने की सोचता हूँ, वह भगवान् की कृपा से सोच रहा हूँ। मेरी बुद्धि किसी ने बिगाड़ी नहीं है। चुम्बक के पास लोहा अपने-आप खिंच जाता है, वैसे ही मेरा चित्त संसार से अलग हो रहा है क्योंकि चुम्बक भगवान् हैं।

हम लोग साधु बनकर भी लड्डू-पेड़ा, पंगत आदि में जाते हैं क्योंकि हमारे में भगवान् का आकर्षण नहीं है। चुम्बक के बीच में कोई आवरण आ जाये तो लोहा नहीं खिंचेगा। कहीं भी जरा भी आसक्ति है, बहुत थोड़ी सी भी तो लोहा चुम्बक के पास नहीं जाएगा। भगवान् हैं चुम्बक और जीव है लोहा। चुम्बक सबको खींचता है लेकिन जिस लोहे में कुछ दूरी रह जाती है, उसको नहीं खींच पाता। मनुष्य अगर विषयों से दूर हो जाए तो स्वयं भगवान् की ओर खिंच जायेगा। हम लोगों को चुम्बक नहीं खींच पा रहा है क्योंकि कहीं-न-कहीं आकर्षण बना हुआ है। कोई कहे कि नहीं, हमारा आकर्षण नहीं है, हम तो साधु हैं, माँ छोड़ आये, बाप छोड़ आये परन्तु माँ-बाप तो वैसे भी छूटते, तुम न भी छोड़ते तब भी मृत्यु के बाद छूटते।अतः माँ-बाप, स्त्री-पुत्रादि छोड़ना तो छोटी बात है। कठिन है – इस शरीर की आसक्ति छोड़ना, इन्द्रियों की आसक्ति छोड़ना, उससे भी कठिन है अन्तःकरण की आसक्ति छोड़ना। अन्तःकरण की आसक्ति में अहं है, मन है, बुद्धि है, चित्त है। विरक्त होकर भी साधुओं में – मैं बड़ा, तू छोटा, आदि इस प्रकार परस्पर विवाद होता है। इसलिए अहं की आसक्ति नहीं छूटती है। तुलसीदास जी ने लिखा है –

"जिव जबतें हरितें बिलगान्यो,
तबतें देह गेह निज जान्यो ।"

शरीर को जब से हमने अपना घर मान लिया है, तब से भगवान् से अलग हैं। शरीर की आसक्ति जब तक है, हम भगवान् से अलग हैं। हम घर छोड़ आये, माँ-बाप छोड़ आये, स्त्री-पुत्र छोड़ आये, यह छोटी बात है लेकिन देह की आसक्ति नहीं छूटती है। लड्डू खाने का हमारा मन कर रहा है, बुद्धि कहती है – नहीं, मीठा ज्यादा मत खाओ, नुक्सान करेगा, शूगर का रोग हो जायेगा, इस प्रकार बुद्धि मन को रोकती है। कमजोर मन तो खाने लग जाता है। बुद्धि ताकतवर होती है तो मन को पलट देती है, बुद्धि अगर सही है तो फिर मनुष्य विषयों में नहीं गिरता है। जिस समय मन बुद्धि को पटक देता है, तब मनुष्य गिरता है। इसलिए बुद्धि को शक्तिशाली बनाना चाहिए, बुद्धि कैसे ताकतवर बनेगी? बुद्धि एकमात्र सत्संग से सुधरती है।

हीयते हि मतिस्तात हीनैस्सह समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥

हीन व्यक्ति के साथ बुद्धि हीन हो जाती है। समान व्यक्ति के साथ बुद्धि समान हो जायेगी और महापुरुषों के संग से बुद्धि महान बन जाती है। बुद्धि से ही मनुष्य शक्तिशाली बनता है और जब बुद्धि नष्ट हो जाती है तब मनुष्य नष्ट हो जाता है। कामी पुरुष का संग है तो एक न एक दिन स्त्री गिरेगी, कामिनी का संग है तो पुरुष गिरेगा, अवश्य गिरता है किन्तु उसकी बुद्धि ताकतवर है, तब नहीं गिरता है। अर्जुन के सामने उर्वशी आयी, अर्जुन नहीं गिरे। एक देखना होता है भोगदृष्टि से, एक देखना होता है सामान्य रूप से बिना भोगदृष्टि के। जब आसक्ति होती है, तब भोग शुरू होता है। हर आदमी भोग भोगता है लेकिन किसकी आसक्ति कितनी है, इसका पता हमें नहीं है, जिसकी जितनी आसक्ति है, जितनी अहंता है, उसे उतना ही पाप लगता है। वही काम तुम कर रहे हो, वही काम हम कर रहे हैं, तुममें आसक्ति नहीं है तो पाप नहीं

लगेगा। आसक्ति और अहंता जितने अंश में होती है, उतना ही पाप लगता है। इसलिए भगवान् ने गीता में कहा है –

यस्य नाहङ्कृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ॥

(गी. १८/१७)

जिसमें अहम् नहीं है, वह यदि सारे संसार की हत्या कर दे, तब भी उसको पाप नहीं लगेगा। वाल्मीकि रामायण में हनुमान जी ने कहा है कि मन ही इन्द्रियों की जड़ है शुभ और अशुभ अवस्थाओं में। 'शुभ' माने पुण्य, 'अशुभ' माने पाप। हमारा मन जितना आसक्त है, भीतर की चेतना जितनी भोगमयी है, उतना ही पाप लगेगा, उतना ही संस्कार लगेगा और कर्मदण्ड मिलता है। अगर मन तुम्हारा आसक्त नहीं है तो संसार के सब काम करते हुए भी तुम्हें कुछ नहीं हो सकता। आसक्ति छोड़ने के बाद ही कर्म भगवान् के पास पहुँचते हैं –

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

(गी. ५/१०)

आसक्ति है संसार में तो कर्म भगवान् के पास नहीं पहुँचेंगे। कर्म सब वही करते हैं लेकिन अलग-अलग फल मिलता है। जिसकी जितनी आसक्ति है, जिसका जितना अहं है, उतना ही फल मिलता है। इसीलिए गीता में भगवान् ने कहा कि भोग तभी होता है जब मनुष्य उसमें आसक्त हो जाता है। संसार में जन्म तभी होगा जब गुणासक्ति होती है। गुणासक्ति नहीं है तो तुम्हारा जन्म-मृत्यु का झगड़ा खत्म। गुणासक्ति ही मनुष्य के जन्म का कारण बनती है और भगवान् इसी गुणासक्ति को नष्ट कर देते हैं। भगवान् की भक्ति से सबसे पहले गुणासक्ति समाप्त होती है। श्रीमद्भागवत में ये बात कही गयी है –

"यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥"

(भा. ३/५/११)

यह गेहरति (गृहासक्ति) मनुष्य नहीं तोड़ सकता। मनुष्य कैसे तोड़ेगा? मनुष्य की शक्ति नहीं है। इस गृहासक्ति को तो भगवान् काटते हैं। कब काटते हैं? जब वह भगवान् की लीला-कथाओंको सुनता है, कीर्तन सुनता है। तब भगवान् कानों के माध्यम से उसके हृदय में प्रवेश कर जाते हैं। एक दिन में प्रवेश नहीं करते, लगातार सुनते जाओ, तब भगवान् हृदय में आते हैं और हृदय में आने के बाद उसकी गृहासक्ति को काटते हैं। कोई विरक्त बनकर, ज्ञानी बनकर, योगी बनकर आसक्ति नहीं काट सकता, क्योंकि देखा जाता है कि साधु बनने पर भी इन्द्रियों की आसक्ति नहीं छूटती। इस देहासक्ति, इन्द्रियासक्ति का छूटना बड़ी मुश्किल बात है। इस आसक्ति को भगवान् काटते हैं। इसीलिए भगवान् की भक्ति की जाती है, भगवान् ही हमारी गेहरति को काटते हैं, हम लोग नहीं काट सकते।

देव दुर्लभ मानुष देह

भगवान् भक्तों से कितना प्रेम करते हैं, इसको हम लोग समझ नहीं सकते; अगर समझ जायें तो उसी दिन माया समाप्त हो जायेगी। इसी बात को तुलसीदास जी ने लिखा है कि आज तक उनकी कृपा को हम नहीं समझ पाए, अगर करोड़ों मुखों से भी भगवान् की कृपा का वर्णन किया जाए तो भी उनकी कृपा का वर्णन नहीं किया जा सकता।

हरि ! तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों ।
साधन-धाम बिबुध दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों ॥
कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभुके, एक एक उपकार ।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार ॥
बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।
ताते सहौं बिपदि अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ॥
कृपा-डोरि बनसी पद अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो ।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥
हैं श्रुति-बिदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै ।
तुलसिदास येहि जीव मोह-रजु, जेहि बाँध्यो सोइ छोरै ॥

करोड़ों मुख से भी भगवान् के उपकारों का वर्णन नहीं हो सकता। सबसे बड़ी बात तो यही है कि भगवान् ने हमको मनुष्य बनाया जबकि इस मनुष्य शरीर के लिए देवता भी तरसते हैं। पूछा जाये – देवता क्यों तरसते हैं? क्योंकि वे अमृत पीते हैं और भोग भोगते हैं। भोग इसलिए भोगते हैं क्योंकि स्वर्ग में उनको भोग की प्राप्ति बहुत है। मनुष्य भोग कब भोगता है, जब सामने भोग प्राप्त होता है। लड्डू सामने है तब हम खायेंगे या भूख है तब हम खाएँगे। देवताओं के पास हर समय भोग है, हर समय शक्ति है क्योंकि अमृत पीते हैं, वहाँ कभी बीमारी नहीं है, कभी बुढ़ापा नहीं है इसलिए हमेशा भोग भोगते रहते हैं; भक्ति नहीं कर

सकते। देवता लोग चाहते हैं कि हमको भगवान् मनुष्य बनावें।

मनुष्य शरीर में बीमारियाँ हैं, दुःख हैं इसलिए हमको भगवान् की याद आती है। यहाँ पर मृत्यु है, मरने का भय है अगर कष्ट न हो, भय न हो तो कोई भी भगवान् की याद नहीं करेगा। इसलिए मनुष्य शरीर को देवता भी तरसते हैं –

बड़े भाग मानुष तनु पावा ।
सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा ।
पाइ न जेहिं परलोक सँवारा ॥

(रा.मा. उत्तर. ४३)

भगवान् की पहली कृपा हम पर तो यही है कि देव (विबुध) दुर्लभ तन, जिसके लिए देवता भी तरसते हैं, वह भगवान् ने हमको दे दिया। इसका सभी ग्रन्थों में वर्णन किया गया है कि देवता भी मनुष्य शरीर के लिए तरसते हैं। श्रीमद्भागवत में वर्णित है –

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥

(भा. ५/१९/२१)

देवता कहते हैं – अरे! इन लोगों ने क्या पुण्य किया है, जो भारतवर्ष में इनका जन्म हुआ। इनके ऊपर भगवान् स्वयं प्रसन्न हो गये हैं, इनको मनुष्य शरीर में जन्म मिला भारतवर्ष में। पहली बात तो यह है कि बहुत बड़ा संसार है और उसमें भारतवर्ष में जन्म हुआ है। 'अजिर' शब्द इसलिए कहा गया है कि यह राम-कृष्ण की जन्मभूमि भारतवर्ष है। यहाँ जन्म पाकर भी यदि मनुष्य भगवान् का स्मरण नहीं करता तो इससे ज्यादा दुर्भाग्य क्या होगा? भारतवर्ष में जन्म होना

कठिन है। दुनिया में अनेकों देश हैं, कहीं और जन्म मिलता तो आस्तिकता न मिलती। भारत के हर गाँव में भगवान् किसी न किसी रूप में माने जाते हैं, गँवार गाँवों में भी भगवान् शब्द मिलता है। ऐसा संसार में कहीं नहीं है।

ब्रज के गाँवों में चले जाओ तो हर गाँव में सैकड़ों साधु पड़े हुए हैं, मधूकरी (भिक्षा) माँगते हैं और ब्रजवासी उनको देते हैं। ऐसा देश संसार में कहीं नहीं है। यहाँ का गरीब आदमी भी इतना दाता है कि संसार का धनी-से-धनी आदमी भी वैसा दाता नहीं हो सकता। तुम किसी धनी आदमी के मकान में नहीं घुस सकते क्योंकि वहाँ पर पहरेदार (चौकीदार) होंगे परन्तु ब्रज में किसी भी घर में बेरोकटोक जा सकते हो।

पहली बार जब हम ब्रज में आये और भिक्षा माँगने गये तो घर में घुसने से डरते थे। एक घर के दरवाजे पर खड़े होकर हमने कहा – **राधेश्याम...,** तो एक बूढ़ा बोला – अरे ! बाबाजी, यहाँ कौन रोटी देगा? अन्दर चलो जा। तब भीतर घुसे हम। घर में घुसकर दो-चार कदम बढ़कर हमने फिर कहा – **'राधेश्याम'** तो चूल्हा दूर था, वहाँ एक गोपी रोटी बना रही थी, उसने कहा कौन है? हमने कहा – 'राधे-राधे'। वह बोली – अरे ! तू वहाँ से क्यों रोटी माँगे, यहाँ आ। तो हम गए, जब तक चूल्हे के पास उसने नहीं बुला लिया, तब तक फटकारती रही। बोली – नयो बाबा आयो है। तब हमको बात समझ में आयी कि यह ब्रज है। अतः भारतवर्ष में जो मनुष्य शरीर में जन्म मिलता है, उससे भगवान् मुकुन्द की सेवा हो सकती है, जीभ से भगवान् का नाम ले सकते हो, हाथ से भगवान् की सेवा कर सकते हो, पाँव से परिक्रमा कर सकते हो, मुँह से कीर्तन कर सकते हो। सारा शरीर भगवान् के काम में आ सकता है। रोम-रोम भगवान् की सेवा में काम आ सकता है। ऐसा जन्म यहाँ मिला है। देवता लोग देवलोक में बैठकर चर्चा करते हैं हमारा जन्म भारतवर्ष में हो जाये लेकिन वे तरसते रहते हैं, उनका जन्म यहाँ नहीं

हो सकता। यहाँ जन्म होने के बाद भी मनुष्य अन्य साधनों में लग जाता है, भगवान् को भूल जाता है क्योंकि भोगों में लग जाता है, साधु बनकर भी अनेक यज्ञादि साधन करता है; ये साधन बड़े कठिन हैं – यज्ञ करो, तपस्या करो, व्रत करो, दान करो, इससे स्वर्ग तो मिल जायेगा लेकिन भगवान् राम-कृष्ण के चरणों की स्मृति नहीं मिलेगी। इन्द्रियाँ ऐसे भोग देती हैं कि स्मृति (बुद्धि की याददाश्त) चुरा ली जाती है।

किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतै-
र्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ।
न यत्र नारायणपादपङ्कज-
स्मृतिः प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥

(भा. ५/१९/२२)

सबेरे से उठे, अब चाय लाओ, नाश्ता लाओ; ये सब इन्द्रियोत्सव है, उसी में स्मृति चली जाती है, अतिशय इन्द्रियोत्सव होता है। 'अतिशय' माने भोजन करना है तो दाल भी चाहिए, सब्जी भी चाहिए, चटनी भी चाहिए, मीठा भी चाहिए। तमाम व्यंजन बनाने में ही समय बीत जाता है। इस प्रकार इन्द्रियों के लिए उत्सव करते हैं हम लोग। 'उत्सव' उसको कहते हैं जो धूम-धाम से मनाया जाये। धूम-धाम से भोजन करते हैं; उसकी तैयारी होती है रसोई में, कई प्रकार की सब्जियाँ आती हैं, कई सामाग्रियाँ आती हैं। इन्द्रियों का उत्सव मनाते हैं हम लोग तो वहाँ भगवान् कहाँ हैं? कबीरदास जी ने कहा है-

'मैं केहि समुझावों सब जग अन्धा ।
इक-दुइ होय उन्हैं समुझावों, सबहि भुलाना पेटके धन्धा ।'

एक मेरे परिचित व्यक्ति थे, वे धनी थे तो सबेरे से ही गाड़ी में बैठकर नाश्ता करने विशेष रेस्टोरेन्ट में जाते थे केवल जिह्वा-स्वाद के लिए। हमें आश्चर्य होता था कि कैसा जीवन का नाश है। इस नाश का कारण क्या है? पैसा। उस पैसे से मनुष्य इन्द्रियोत्सव मनाता है,

धूमधाम से हर इन्द्रिय का महोत्सव मनाता है। आँख के लिए रंगीन टी.वी. चाहिए, यह घर-घर है। जीवन नष्ट करने के अनेकों उपाय हैं। टी.वी. चल गया, उसके बाद अनेक चैनल चले, देखते जाओ, माया अनन्त है। एक आदमी कितना देखेगा, बीसों चैनल चल रहे हैं। आँख तो एक है, स्मृति एक है। आदमी कभी इस चैनल को देखता है, कभी उस चैनल को देखता है। अनेकों टी.वी. सीरियल चल पड़े हैं। माया अनन्त है, जीवन-नाश होने के अनेक उपाय चल पड़े। अनेक प्रकार के चैनल चल रहे हैं, अनेकों गाने चल रहे हैं, कहाँ तक मनुष्य सुनेगा, सुन नहीं सकता, देख नहीं सकता। इतनी माया अनन्त है और इसी में जीवन नष्ट हो जाता है; इसको इन्द्रियोत्सव कहते हैं। एक-एक इन्द्रिय की तृप्ति के लिए मनुष्य इन्द्रियोत्सव मनाता है, धूमधाम से तैयारी करता है; उससे क्या होता है? स्मृति चली जाती है। ये बात भागवत में कही गयी है और बड़े आश्चर्य की बात है कि शुकदेव जी के द्वारा कही गयी है, वह अपनी दिव्य दृष्टि से देख रहे थे कि कलियुग में ऐसा होगा। अगर कोई स्वर्ग भी प्राप्त कर ले तो उससे क्या होगा?

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवात्
क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरेः ॥

(भा. ५/१९/२३)

उसे फिर यहीं आना पड़ेगा। इससे तो भारतवर्ष में एक क्षण का जन्म मिल जाये तो वह ज्यादा अच्छा है क्योंकि यहाँ एक क्षण को भी यदि मनुष्य भजन कर लेता है तो उससे भगवान् की प्राप्ति होगी। यहाँ का एक क्षण भी देवताओं के कल्प पर्यंत आयु से भी अधिक दुर्लभ है। कल्प कहते हैं ब्रह्मा जी के एक दिन को, जो अरबों वर्ष के बराबर होता है, ऐसे अरबों वर्ष के भक्तिहीन जीवन से ज्यादा अच्छा है मृत्युलोक का एक क्षण क्योंकि एक क्षण भी अगर मनुष्य भजन करेगा तो भजन अमोघ है, नष्ट नहीं होता। कई लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं कि

सत्संग के लिए यदि हम आयें तो दुकान बन्द करना पड़ेगा, कैसे दुकान बन्द करें? वही तो हमारी कमाई का साधन है। सुनकर हम चुप रहते हैं। तुम देवता बन जाओ, हजारों-लाखों वर्ष तक स्वर्ग में भोग भोगो, उससे अच्छा है यहाँ मृत्युलोक में एक क्षण को कीर्तन कर लो। कहाँ तो वह कमाई और कहाँ एक क्षण, लेकिन मनुष्य समझ नहीं पाता, क्यों? क्योंकि इन्द्रियोत्सव मनाता है। खाने-पीने में, देखने में, रहन-सहन में उसे इन्द्रियोत्सव चाहिए। इसीलिए उसकी स्मृति भगवान् में न कभी आयी, न आयेगी। स्वर्ग में जाने से क्या फायदा? श्रीमद्भागवत् में कहा है –

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥

(भा. ५/१९/२४)

जहाँ तीन चीजें नहीं हैं, वहाँ एक क्षण को भी मत रहना, चाहे तुमको इन्द्रलोक-ब्रह्मलोक ही क्यों न मिल जाएँ। एक तो जहाँ भगवान् की कथा नहीं है; दूसरा – जहाँ भगवान् के आश्रित साधु (भक्तों) का संग नहीं है; तीसरा – भगवान् का जहाँ महोत्सव नहीं है। परन्तु मनुष्य तुच्छ मकान–कोठी, दुकान ही नहीं छोड़ सकता फिर देवलोक क्या छोड़ेगा क्योंकि उसकी स्मृति की चोरी हो गयी है, अपने हाथ में नहीं है। माल चोरी हो गया। चोरी होने के बाद माल दूसरे हाथ में चला जाता है, उसी को चोरी कहते हैं। जब माल अपने हाथ में नहीं है और चोर चुरा ले गया तो उस माल का मालिक चोर है, वह माल को कहीं बेचे, गिरवी रखे, कुछ भी करे। वैसे ही जिसकी स्मृति चोरी हो गयी, वह मर गया। जिसकी स्मृति में भगवान् नहीं, वह मर गया –

कलेर्दुर्विषहः क्रोधस्तमस्तमनुवर्तते ।
तमसा ग्रस्यते पुंसश्चेतना व्यापिनी द्रुतम् ॥

तया विरहितः साधो जन्तुः शून्याय कल्पते ।
ततोऽस्य स्वार्थविभ्रंशो मूर्च्छितस्य मृतस्य च ॥

(भा. ११/२१/२०,२१)

तमोगुण आकर चेतना चुरा लेता है। चेतना क्या है? अन्तःकरण में जो आत्मा की शक्ति है, वह सारे शरीर में व्याप्त है। हाथ में सुई चुभाओ तो दर्द हो जायेगा क्योंकि चेतना है, वह सुख-दुःख का अनुभव करती है। पाँव में काँटा लगा तो चुभेगा क्योंकि चेतना है, मुर्दे को कुछ पता नहीं पड़ेगा। इस चेतना में ही सुख-दुःख की अनुभूति होती है। उस चेतना को तमोगुण चुरा लेता है, उसके बिना जीव शून्य हो जाता है। बेहोश आदमी के सामने कुछ भी करो, उसे कुछ पता नहीं पड़ेगा। मृत हो गया मतलब चेतना चली गयी। जिसकी चेतना चली गयी, वह क्या भजन करेगा भगवान् का, वह मूर्छित हो गया, मृत हो गया। चाहे साधु हो, सन्त हो, विरक्त हो; चेतना चली जाती है फिर वह भजन नहीं कर सकता। चेतना शुद्ध होती है तो स्मृति में भगवान् आ जाते हैं। जिसकी चेतना चली गयी, वह मर गया। जैसे मुर्दा कभी भजन नहीं कर सकता, वैसे ही संसारी लोग भगवान् को भूल गये हैं, क्यों भूल गये हैं? क्योंकि उनकी चेतना चली गयी है। चेतना कहाँ चली गयी? इन्द्रियोत्सव में चली गयी। इन्द्रियों का उत्सव मनाते हैं हम लोग। भोजन करेंगे तो सुबह से शाम तक अनेक चीजें खाते हैं रसना के उत्सव में।

योषिद्धिरण्याभरणाम्बरादिद्रव्येषु मायारचितेषु मूढः ।
प्रलोभितात्मा ह्युपभोगबुद्धयापतङ्गवन्नश्यति नष्टदृष्टिः ॥

(भा. ११/८/८)

स्त्री, सोना, गहना, कपड़े आदि ये सब माया से रचित चीजें हैं, हमलोगों को इनके प्रति लोभ हो जाता है कि ये बड़ा अच्छा कपड़ा है, इसे खरीदेंगे। ये बड़ी अच्छी घड़ी है, बड़ा अच्छा गहना है, ये बड़ी अच्छी माला है, ये बड़ा अच्छा श्रंगार है। भोग दृष्टि से लोभ हो जाना विनाश है। भोग का त्याग सीखो। ये कपड़ा उसे अच्छा मिल गया, ये

पोशाक हमें खराब मिली, ये माला उसको अच्छी मिल गयी; ये सब भोगदृष्टि है। भोगदृष्टि का त्याग नहीं करोगे तो मरोगे, जैसे पतंगा आग की लपट में जल जाता है। वह दीपक की लौ देखता है, सोचता है बड़ा सुन्दर रूप है। उस रूप का भोग करने के लिए उड़ता है। उड़ कर जाता है जहाँ आग है, रूप नहीं है। थोड़ा सा जला, फिर घायल हो गया लेकिन उसकी भोगदृष्टि बनी हुई है, अधजला होने पर फिर उड़ता है, उड़कर जाने का प्रयास करता है दीपक की लौ के पास। जब तक पूरा नहीं जल जाता, सर्वनाश नहीं हो जाता, तब तक दीपक को नहीं छोड़ता। घायल होने पर उड़ नहीं सकता, फिर भी बार–बार उधर देखता है – जहाँ जलना है, जहाँ विनाश है।

इसी प्रकार मरणासन्न मनुष्य बिस्तर पर पड़ा हुआ है लेकिन बार-बार यही कहता है – 'हमारे बच्चों को दिखा दो, स्त्री को दिखा दो।' उसकी दृष्टि नष्ट हो चुकी है, उसकी चेतना नष्ट हो चुकी है, जब तक सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हो जायेगी, वह वहीं देखेगा, वही करेगा।

लोभ आ जाता है – यह बड़ा अच्छा कपड़ा है, बस, तुम्हारी चेतना नष्ट हो गयी। ये बड़ी अच्छी साड़ी है, बड़ा अच्छा सूट है, बस, तुम्हारी चेतना नष्ट हो गयी। हम लोग शरीर को सजाते हैं, इससे भोगदृष्टि बढ़ाते हैं। घर छोड़कर हम लोग साधु बने और एयर बैग रखते हैं, कहीं जाते हैं तो बढ़िया एयर बैग टांग कर चलते हैं, यह विनाश है। हम लोग विरक्त होकर ऐसा करते हैं। इससे भोगदृष्टि का नाश नहीं हो पाता। कबीर दास जी का एक पद है –

मुखड़ा क्या देखै दरपन में तेरे दया धरम नहिं मन में ।
गली-गली की राँड़ रिझाई दाग लगाया तन में ॥
झीनी धोती पाग लपेटे तेल चुचै जुलफन में ।
पाथर की एक नाव बनायी उतरा चाहे छिन में ।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो कायर चढ़ै न रन में ॥

मुख क्या देखता है दर्पण में, तेरे हृदय में तो न दया है, न धर्म है। अपने भीतर देख, तेरे भीतर क्या है? उठने-बैठने, चलने-फिरने में भोगदृष्टि है। ये भोगदृष्टि पाप है, ये तुमको डुबा देगी। जब मनुष्य मर जाता है तो उसके शरीर को नंगा करके नहलाते हैं और शमशान में ले जाते हैं फूंकने। तिजोरी और धन सब धरा रह जाता है। यह शरीर कच्चा है, किस काम आया? पत्थर की नाव पर बैठकर हम भवसागर पार-करना चाहते हैं। घर से चले हैं साधु बनकर और हाथ में बढ़िया बैग है, बढ़िया सूट है, ये सब क्या है? भोग बुद्धि है। दृष्टि नष्ट हो गयी है। माया अनन्त है। भोगदृष्टि केवल पत्थर की नाव है, इस पर चढ़कर हम लोग पार जाना चाहते हैं। ये लोग गीदड़ हैं, कायर हैं, ये क्या लड़ेंगे रण में ? सब जगह भोगबुद्धि है – उठने में, बैठने में, पहनने में, खाने-पीने में। पानी पीना है तो जाने कितने प्रकार के पेय पदार्थ हैं – गरम, ठंडा, कोका-कोला आदि जाने क्या-क्या चल पड़ा है। ये सब विनाश के रास्ते हैं। इसमें स्मृति चली जाती है। शुकदेव जी कहते हैं कि मनुष्य अतिशय इन्द्रियोत्सव मनाता है। आधुनिक काल में जो बड़ा अंधा है, वह बड़ा आदमी है। जो जीवन का नाश कर रहा है, वह बड़ा आदमी है। जिसकी स्मृति भगवान् से एकदम अलग है, वह बड़ा आदमी है। लोगों के पास इतना धन है कि ब्याज से ही आराम से खा सकते हैं लेकिन उनकी स्मृति चोरी हो गयी है। कभी तृप्ति नहीं हो सकती। जैसे पतंगा आधा जल कर भी दीपक की लौ की तरफ देखता रहता है, जब पूर्णरूप से जल गया, आँख ही नहीं रही, चेतना ही नहीं रही, देखने की शक्ति नहीं रही अर्थात् सब खत्म हो जाता है खेल। इस

तरह से ये भगवान् की कृपा का दुरुपयोग किया हम लोगों ने। तुलसीदास जी कहते हैं –

"कोटिहुँ मुख कहि जात न प्रभुके, एक एक उपकार ।"

आपके एक-एक उपकार की महिमा का गान करना करोड़ों मुखों से भी असम्भव है। आपने करुणा करके मनुष्य बना दिया। संत गोरखनाथ जी ने कहा – वीर्य की एक बूँद में १७ लाख जीवाणु रहते हैं। मनुष्य भोग भोगता है तो बहुत सी वीर्य की बूँदें व्यर्थ चली जाती हैं। उन १७ लाख जीवाणुओं में किसी एक को भगवान् मनुष्य शरीर देते हैं, बाकी सब जीवाणु बेकार चले गये, उनको मनुष्य शरीर नहीं मिलता। ये मनुष्य शरीर मिला भी है तो हम लोग इसको इन्द्रियोत्सव में नष्ट कर देते हैं। ऐसे में भगवान् की स्मृति कहाँ से आ सकती है? स्मृति कब लौटेगी, जब इन्द्रियोत्सव बंद हो जायेंगे। गोस्वामी जी लिखते हैं कि आपने मुझे कृपा कर मनुष्य बना दिया –

साधन-धाम बिबुध दुरलभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हों ॥
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार ॥

करोड़ों मुख से एक-एक उपकार हम कहें तो भी उसका वर्णन नहीं हो सकता। मनुष्य बनाया और वह भी भारतवर्ष में। तुलसीदास जी कहते हैं – फिर भी मैं आपसे कुछ और माँगूगा, आप तो बड़े उदार हैं, दे देंगे। क्या माँगते हो? ये जितने सांसारिक विषय हैं, ये पानी हैं और हमारा मन मछली है। मछली बिना पानी के जी नहीं सकती, तुरन्त मर जाती है। हमारा मन मछली बन गया है –

'बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक ।'

एक पल को भी हमारा मन संसार से अलग नहीं हटता। अगर संसार से हटेगा तो भगवान् आ जायेंगे। देखो, बीच में कोई रुकने की जगह नहीं है। जैसे – हमारे हाथ में पुष्प है, यह हाथ से छूटेगा तो सीधे जमीन पर जायेगा, बीच में रुकने की कोई जगह नहीं है। वैसे ही मन

संसार में नहीं है तो भगवान् में है और यदि भगवान् में नहीं है तो संसार में है। एक पल को भी यह मन संसार से नहीं हटता –

'तदपि नाथ कछु और माँगिहौं, दीजै परम उदार ॥'

अनन्त कष्ट हम पा रहे हैं। चौरासी लाख चर, अचर आदि अनेक योनियाँ हैं। न चलने वाले पेड़-पौधे, अगणित प्रकार की घासें हैं, अगणित प्रकार के पेड़ हैं, अनेकों प्रकार के साग-सब्जी हैं। गिनती नहीं है और हमही लोग ये सब बनते हैं तथा इसमें अनन्त कष्ट पाते हैं।

इसलिए मछली को अगर फाँस लिया जाये और पानी से अलग कर दिया जाये, क्योंकि अपने आप तो वह अलग होगी नहीं। इसी प्रकार हमारा मन स्वतः संसार से अलग नहीं होगा। अतः हे प्रभु ! इस मन रूपी मछली को आप फाँसो। कैसे फाँसोगे? मछली फँसाने वाला आटे की गोली बनाकर उसे कांटे में फँसाकर पानी में छोड़ता है। मछली उस काँटे की गोली को खाने के लिए आती है, जब खाती है तो काँटा उसके गले में चुभ जाता है। अब काँटा चुभ गया तो भाग नहीं पाती। मछली फँसाने वाला देखता है कि वजन बढ़ गया तो समझ जाता है कि मछली फँस गयी, उसको ऊपर खींच लेता है और मछली ऊपर चली आती है, फिर उसे मारकर खा जाता है। मछली फँसी क्यों? रसना के लोभ में। तुलसीदास जी कहते हैं – हे राम ! कृपा की तो आप डोर बनाओ, आपके चरणों में जो अंकुश का चिन्ह है, उस काँटे को लगाओ तथा मीठा चारा (भोजन) उसमें लगा दो –

'कृपा-डोरि बनसी पद अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो ।'

हे राम ! इस तरह आप मेरे मन रूपी मछली को फाँस लो। तुम्हारे लिए तो यह खेल होगा। राम जी ने कहा कि फिर तुम साधन करो, हमसे क्यों माँगते हो? योग करो, ज्ञान-वैराग्य करो।

तब तुलसीदास जी ने कहा –

हैं श्रुति-बिदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै ।
तुलसिदास येहि जीव मोह-रजु, जेहि बाँध्यो सोइ छोरै ॥

हर इन्द्रियों के देवता हैं, कितने देवता हैं, कहाँ-कहाँ तक जायें, इसलिए जीव रूपी जंतु (मनुष्य) को मोह रूपी रस्सी से जिसने बाँधा है, वही खोल सकता है, इसलिए आपसे मैं माँग रहा हूँ।

भगवान् की कृपा हम लोग समझ नहीं पाते, इसीलिए भगवान् से विमुख हैं।
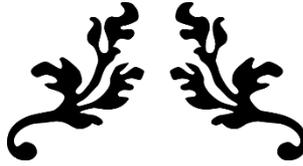
भवसागर की यात्रा

बहुत से लोग घर से चलते हैं भजन करने के लिए और थोड़े ही दिन में उनका ज्ञान-वैराग्य आदि सब नष्ट हो जाता है। फिर वह सांसारिक आसक्ति, धन, भोग आदि में डूब जाते हैं। हजारों लोगों के बीच में भाषण करने वाले प्रख्यात कथावाचक ऐसे संग्रही बन जाते हैं कि जितना गृहस्थ भी नहीं बन सकता; इसका कारण यही है कि जीव को अनादिकाल से विषयों का अभ्यास है, माया का अभ्यास है और उसके संस्कार चित्त पर जमा हैं। जब तक संस्कार रहते हैं, तब तक वह विषयों में जाएगा। संस्कार क्या है? संस्कार पिता है, उसकी बेटी है वासना और वासना की बेटी है स्मृति। संस्कार ही वासना पैदा करता है और वासना से स्मृति आती है और स्मृति से वैसी प्रवृत्ति पैदा हो जाती है – राग-द्वेषमयी। इसलिए साधु बनने के बाद भी हमलोग संग्रह करते हैं और आसक्तियों का त्याग नहीं कर पाते। वासना से अवश्य स्मृति पैदा होती है, जब तक संस्कारों का नाश नहीं होता है, वासनायें पैदा होती रहती हैं और वासना से स्मृतियाँ आती हैं। स्मृति से राग-द्वेष पैदा हो जाता है। 'किसी में राग किया, किसी में द्वेष किया' ये क्रम कभी नष्ट नहीं होता। इसलिए मनुष्य इस अध्यात्म पथ पर चल नहीं पाता और गिर जाता है। इसीलिए लोग साधु बनने से घबराते हैं और रोकते हैं। संसारी लोग भजन करने से इसलिए रोकते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि चार दिन बाद यह वासनाओं में गिरेगा और फिर लौटकर उल्टा चलेगा। बीच में कोई ऐसा रास्ता नहीं है कि कहीं पर रुक जाये और मुड़कर देखे कि क्या हो रहा है संसार में। दक्ष के यज्ञ में जब भगवान् प्रगट हुए तो सदस्यों ने स्तुति में कहा –

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र-
व्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्यात्मगेहोरुभारः ।
द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः

पादौकस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥

(भा. ४/७/२८)

सदस्य बोले – इस रास्ते (अध्यात्म पथ) पर कोई चल नहीं सकता क्योंकि अनादिकाल से जीव आपके चरणों से अलग हो गया और इस 'संसार मार्ग' में भटक रहा है –

"जिव जबतें हरितें बिलगान्यो, तबतें देह गेह निज जान्यो ।"

कब से भटक रहा है जीव, कोई निश्चित समय नहीं है अर्थात् अनादिकाल से। जब से जीव ने अपने शरीर को अपना घर समझा, तब से भगवान् से अलग है। इसीलिए इसको *'उत्पत्त्यध्वनि'* कहा, उत्पत्ति कब हुई कुछ पता नहीं। जब से यह उत्पन्न हुआ तभी से इसी सांसारिक रास्ते (भव मार्ग) पर चल रहा है (जबसे यह जीव बना है अर्थात् जबसे इसकी जीव संज्ञा हुई है, तबसे यह इस रास्ते पर चल रहा है)। जाने कितने जन्म बीत गये इसको मरते-जीते। चौरासी लाख योनियों में कोई गिन नहीं सकता, कितनी बार यह पैदा हुआ, कितनी बार मरा। जन्म लेता है फिर मरता है, जन्म लेता है फिर मरता है; चाहे कीड़ा है, मकोड़ा है, कुत्ता है, बिल्ली है, मनुष्य है। ये सब चर-अचर जीव यात्रा कर रहे हैं। कौन सी यात्रा? संसार की यात्रा। कोई मर गया तो मरने के बाद क्या उसे आराम मिला? नहीं, मरने के बाद भी आराम नहीं मिलेगा। कुछ मूर्ख लोग आत्महत्या कर लेते हैं अधिक कष्ट में क्योंकि वे समझते हैं कि मरने के बाद आराम मिलेगा। संसार एक ऐसा रास्ता है जिसमें कहीं तुमको बीच में रुकने अथवा आराम करने की जगह नहीं है। इसलिए *'अशरण'* शब्द का प्रयोग किया गया। *'अशरण'* यानी कोई ऐसा स्टेशन नहीं है बीच में, जहाँ आराम करें, चलते चलो बस और कष्ट भोगते चलो, इसी का नाम संसार है। भागवत में श्रीकृष्ण ने कहा – कर्म से ही जीव पैदा होता और कर्म से ही मरता है –

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ।
सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥

(भा. १०/२४/१३)

सुख, दुःख, भय और कल्याण यह कर्म से ही मिलता है। इसलिए श्रीकृष्ण ने इन्द्र की पूजा बन्द करके, सभी ब्रजवासियों से कहा कि अपने कर्म को सम्पूज्य बनाओ, किसी देवता के चक्कर में मत पड़ो, अपने कर्मों को पूज्य बनाओ।

सुख की आशा में जीव मेहनत करता है लेकिन दुःख मिलता है, सुख नहीं मिलता। जैसे कोई थक गया, एक कंधे पर बोझ है तो कंधा बदल लेता है, बस इतना आराम होता है। जो कुछ करता, धन कमाता है सुख के लिए, उसके साथ पचासों दुःख लिपट कर चले आते हैं। प्रह्लाद जी ने एक बड़ी अच्छी बात कही नृसिंह भगवान् के सामने –

कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः
क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ।
निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान्
कामानलं मधुलवैः शमयन्दुरापैः ॥

(भा. ७/९/२५)

ये संसार की इच्छाएँ ऐसी हैं कि इनको सुनने में बड़ा सुख मिलता है। कोई करोड़पति आदमी है, उसके पास दस गाड़ियाँ हैं, सुनने में लगता है कि बड़ा सुखी है लेकिन वहाँ सुख नहीं है। सुनने में सुख मालूम पड़ता है जबकि है वो आग। मृगतृष्णा कभी बुझती नहीं है। प्यास बढ़ती जाती है। इस संसार में जितने सुख हैं, वे आग हैं और यह शरीर के लिए ही तो करता है मनुष्य; ब्याह करता है, बेटा पैदा करता है और वह शरीर भी एक दिन उसे छोड़ देता है। जाने कितने रोग लगे हैं इस शरीर में, उनकी गिनती नहीं है, फिर भी जीव का मन कभी हटता नहीं है संसार से, यद्यपि विद्वान् है, पढ़ा-लिखा है लेकिन क्या कर रहा है, धधकती आग को शहद की बूंदों से बुझा रहा है। कहीं शहद से आग

बुझती है? वे बूँदें भी मुश्किल से मिलती हैं। पैसा ऐसे ही नहीं मिलता, बड़ी मुश्किल से कमाओ, मुश्किल से मिलता है। ब्याह भी मुश्किल से होता है। मुश्किल से स्त्री आयी तब जाकर कहीं विवाह हुआ, फिर थोड़ी देर के लिए सुख मिला, वह भी मुश्किल से मिला, वह भी क्षणिक है। शरीर में इतनी भोगशक्ति कहाँ है और उन बूंदों से कामानल को बुझा रहा है। काम भयानक अग्नि है। क्या हुआ सुन्दर स्त्री मिल गयी, है तो मल-मूत्र की पिण्डी, क्या हुआ थोड़ी देर भोग लिया, क्षणिक भोग ही तो रहा। हर प्राणी की यही स्थिति है, क्या अरबपति, क्या खरबपति, क्या साधु, क्या सन्त ?

इसलिए मरने से शान्ति नहीं मिलती, फिर दूसरा शरीर मिलता है, वह पहले से तैयार है क्योंकि अशरण है; कोई बीच की जगह नहीं है संसार की यात्रा में रुकने को कि मरने से तुमको छुट्टी मिल जायेगी। इसके बाद सदस्यों ने कहा – अनन्त कष्ट हैं भव यात्रा में – कीड़े बन जाओ, मकोड़े बन जाओ, सर्प बन जाओ। हर यात्रा में अर्थात् प्रत्येक चर-अचर योनि में क्लेश ही क्लेश हैं, अनन्त क्लेश हैं, इतने हैं कि हर यात्रा काटना मुश्किल हो जाता है। चिड़िया बन जाओ तो बाज का डर है, चूहा बन जाओ तो सर्प का डर है, सर्प बनो तो नेवले का डर है। कुछ भी बन जाओ, काल रूपी सर्प बड़ा उग्र है। जिस समय काल आता है तो वह नहीं देखता कि यह आदमी मर जायेगा तो स्त्री अनाथ हो जायेगी, बच्चे अनाथ हो जायेंगे। काल उसी समय ले जाता है, उग्रता से ले जाता है, प्राणों को खींचता है तो जीव को अनन्त कष्ट होता है –

जनमत मरत दुसह दुख होई ।

काल अगर उग्र न हो तो वह ऐसा काम कैसे करेगा? उग्र रूप बनाकर आता है और पीछा कर रहा है। 'अन्विष्टे' तुम भाग रहे हो और काल पीछा कर रहा है। मकान क्यों बनाते हो, आराम से रहेंगे। कोई डर नहीं, ऐसा मकान बनाया। चोर नहीं आ सकें, डाकू नहीं आ सकें,

कीड़े नहीं आ सकें, सर्प-बिच्छू नहीं आ सकें, ऊँची हवेली बन गयी लेकिन काल तो नहीं रुकेगा, काल तो ढूँढ़ ही लेगा तुमको। *'अन्विष्टे'* माने ढूँढ़ रहा है, कहाँ तक भागोगे? पीछे लगा है काल, थोड़ी देर में एकदम चट कर जायेगा जैसे सर्प चूहे को खा जाता है। एक ग्रास में खा जायेगा और तुम भाग नहीं सकते हो, क्यों? क्योंकि विषय मृगतृष्णा लगी हुई है। 'तृष्णा' माने प्यास और कमा लें, और कमा लें, और भोग भोग लें, इसके लिए तुम्हारे ऊपर बोझ है। *'आत्मगेहोरुभारः'* 'आत्म' माने शरीर, 'गेह' माने घर-परिवार, तुम भागोगे कहाँ तक? जंगल में साधु बन जाओगे, वहाँ भी शरीर है तुम्हारा। परिवार में जाओगे तो वहाँ परिवार का बोझ है। *'उरुभार'* इतना बोझ है कि तुम दौड़ नहीं सकते, चल नहीं सकते। 'दुर्ग' माने चलना मुश्किल है लेकिन यात्री चलता रहता है। ***'संसरति इति संसारः'*** संसार रुकता नहीं, चलता रहता है। यात्रा बन्द नहीं होगी, चाहे तुम मर जाओ, जिन्दा रहो। चलना पड़ेगा तुमको। आगे चले तो बीच में गड्ढा आ गया। *'द्वन्द्वश्वभ्रे'* श्वभ्र माने गड्ढा। ऐसा गड्ढा आया बीच में कि सैकड़ों फीट नीचे गिर पड़े। गड्ढा क्या है? राग-द्वेष। दो गड्ढे हैं। या तो कहीं राग करोगे, गृहस्थ है तो स्त्री में राग हो गया, बच्चों में राग हो गया। राग के गड्ढे में चले गये, अब सारे जन्म गड्ढे के बाहर निकल नहीं पाओगे। द्वेष हुआ तो किसी से लड़ाई हुई, झगड़ा हुआ, द्वेष के गड्ढे में गिर पड़ा जीव। आजन्म फिर उस गड्ढे में पड़े रहोगे। उस गड्ढे में बड़े हिंसक जानवर हैं। *'खलमृगभये'* 'खलमृग' माने उस गड्ढे में शेर हैं, चीते हैं, भालू हैं। वे उस गड्ढे में भी तुमको खा जायेंगे, खा रहे हैं। संसार के जितने भी जीव हैं, जिनसे हम प्रेम करते हैं, चाहे स्त्री है, पुत्र है, ये खलमृग हैं। ये या तो राग में फँसा लेंगे या द्वेष में। इसका परिणाम क्या होगा? वहाँ आग जल रही है उस गड्ढे में, उस आग में जलते रहोगे। जो शोक पैदा होता है, वही है आग। अगर सोचो कि वहाँ लोग हमको बचायेंगे, नहीं, *'अज्ञसार्थ'* यानी वहाँ अज्ञानी लोग झुण्ड के झुण्ड जल रहे हैं। 'सार्थ' माने व्यापारियों का समुदाय। उस गड्ढे में जितने पड़े हैं, सब जल रहे

हैं। माँ जल रही है, बाप जल रहा है, बेटा जल रहा है, स्त्री जल रही है। कौन किसकी रक्षा कर सकता है? नारद जी ने युधिष्ठिर से कहा –

कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ।
कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥

(भा. १/१३/४५)

सर्प ने मेंढक को पकड़ रखा है और मेंढक चिल्ला रहा है 'टर्र-टर्र'। मेंढक सर्प के मुँह में है, अब मेंढक बेचारा किसी दूसरे कीड़े को क्या बचाएगा, वह स्वयं काल के मुँह में पड़ा हुआ है, सब एक-दूसरे को खा रहे हैं। कोई बचाने वाला नहीं है।

त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ।
बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽपवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥

(भा. ७/९/१६)

नृसिंह भगवान् से प्रह्लाद जी कह रहे हैं – मैं डर गया हूँ, क्यों? नृसिंहदेव पूछते हैं – हमारे भयानक रूप को देखकर डरे हो। प्रह्लाद कहते हैं – नहीं, आपके इस भयानक नृसिंह रूप को देखकर हमको डर नहीं लगता है। नृसिंह भगवान् ने कहा – फिर क्यों डर लगता है? प्रह्लाद जी बोले – इस भयानक संसार की जो चक्की है, यह पीस रही है हर प्राणी को, हर आदमी इसमें कष्ट पा रहा है और पिस रहा है। कैसे पिस रहा है? 'बद्धः' उसके हाथ-पाँव बंधे हुए हैं। क्यों बंधे हैं? अपने कर्मों से बंधे हैं। हम गृहस्थ बने, बच्चे पैदा किये, मोह हुआ, ये हमारे कर्म थे। कर्मों से हम बंध गये हैं। भगवान् रस्सी लेकर बाँधने नहीं आये, न किसी को भगवान् ने बाँधा, न बाँधेंगे। जीव अपने कर्मों से बँधता है, बंधा है और चक्की में पिस रहा है। यह जीव संसार की चक्की में पिस तो रहा ही है लेकिन उस चक्की में सैकड़ों कीड़े लगे हैं, जो उसे खा रहे हैं। स्त्री, पुत्र, परिवार, माँ-बाप, भाई-बहन – ये सब जीव को खा रहे हैं। सारा संसार स्वार्थी है, माँ है, बाप है, चाहे कोई भी है –

सुर नर मुनि सब कै यह रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

(रा.मा. किष्कि. १२)

ये जीव को खा रहे हैं। कबीरदास जी ने कहा है –

मात कहै यह पुत्र हमारा, बहन कहे यह भाई ।
भाई कहे यह भुजा हमारी, हंस अकेला जाई ॥

माँ कहती है – यह हमारा बेटा है; बहन कहती है – यह मेरा भाई है; भाई कहता है – यह हमारी भुजा है, ये मेरा सगा भाई है। लेकिन कोई किसी का नहीं है, जब मौत हो जाती है तो –

पेट पकड़ कर माता रोवे, बाँह पकड़कर भाई ।
लिपट-चिपटकर तिरिया रोवै, हंस अकेला जाई ॥

इस संसार का कोई भी नाता सच्चा नहीं है। *'ग्रसतां प्रणीतः'* ये परिवार के लोग तुमको कीड़े बनकर खा रहे हैं और सारा जीवन खा जायेंगे। जैसे मादा बिच्छू से सैकड़ों बच्चे पैदा होते हैं एक साथ और सबसे पहले माँ के ही शरीर को खाते हैं और वह मोह में अपने शरीर को खिला देती है। सैकड़ों बिच्छू खा रहे हैं और वह खिला रही है क्योंकि मोह है। अनन्त कष्ट पाता है मनुष्य लेकिन मोह को नहीं छोड़ता है।

मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला ।
तिन्ह ते पुनि उपजहिं बहु सूला ॥

(रा.मा. उत्तर. १२१)

एक दो तरह के नहीं, हजारों कष्ट पैदा होते हैं मोह से, लेकिन मनुष्य मोह छोड़ नहीं सकता। प्रह्लाद जी कहते हैं कि उन लोगों के बीच में मैं बाँधकर डाल दिया गया हूँ और वे मुझे खा रहे हैं। स्त्री है, पुत्र है – सब खा रहे हैं, इनकी कामना-पूर्ति करोगे तो प्रेम करेंगे, नहीं तो प्रेम टूट जाता है, यह स्वार्थ-सिद्धि हेतु दिखावा मात्र है, सच्चा प्रेम नहीं है। इसीलिए संसार की यात्रा में जीव कष्ट भोग रहा है। *'पादौकस्ते शरणद'*

भगवान् शरण देने को तैयार हैं। भगवान् कहते हैं – "हमारे चरणों में आ जाओ, तुम्हारा यही निवास स्थान है।"

भगवान् के चरण ही हम लोगों का वास्तविक घर है। हम लोगों ने यहाँ नकली घर बनाये हैं। क्या उस घर में घुसने को मिलेगा? हाँ, दरवाजा खुला है। कभी भी आ जाओ।

दीन बंधु का द्वार खुला है, आना हो सो आवै ।
अभय दान का दान बँट रहा, लेना हो ले जावै ॥

लेकिन जीव आपकी शरण में नहीं आता है क्योंकि काम से ग्रसित है। विवाह हो गया तो सोचता है, कुछ दिन परिवार का सुख ले लें, अब बच्चे हो गये तो सोचता है कि बड़े हो जायें, बड़े होने पर सबका विवाह कर दें, फिर नाती-पंती हो गये, उनका भी विवाह कर दें, अपने पाँवों पर खड़े हो जाएँ, ऐसा करते-करते मनुष्य मर जाता है। कामनायें कभी भी जीव को भगवान् की शरण में नहीं जाने देती हैं। एक कामना खत्म हुई तो दूसरी आ जाती है।

अतः प्रह्लाद जी बोले – यह संसार सर्पों का कुआँ है। जीव इसमें गिरा हुआ है, लाखों सर्प इसमें उसे खा रहे हैं। मनुष्य इस कुएँ में गिरता क्यों है? कामनाओं के कारण, एक कामना गयी तो दूसरी कामना आ गयी और मनुष्य कुएँ के भीतर गिरता जाता है, गिरता जा रहा है। क्यों? 'प्रसंगात्' क्योंकि उसकी आसक्ति नहीं छूटती है। हर जीव राग-द्वेष के गड्ढे में पड़ा है। एक गड्ढा हटा तो दूसरा आया। यह संसार है, इसमें अनन्त क्लेश हैं। ये कभी खत्म नहीं होते और इस तरह से जीव कभी भगवान् की शरण में नहीं पहुँच पाता।

निष्ठा के आदर्श शिखर पर भीष्म

निष्ठा का सम्बन्ध शरीर से नहीं होता, निष्ठा एक अलग चीज है। जैसे – भीष्म पितामह शर शय्या (बाणों की शय्या) पर पड़े थे लेकिन उनकी निष्ठा भगवान् में थी, वह भगवान् की करुणा को याद कर रहे थे –

शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ।
प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे भगवान् गतिर्मुकुन्दः ॥

(भा. १/९/३८)

यह एक उदाहरण है निष्ठा का, उदाहरण इसलिए दिया जा रहा है कि हम सभी लोग इसी लक्ष्य से चलें। जैसे – भगवान् की स्तुति में भीष्म ने कहा है – मैं कितना बड़ा आततायी हूँ (आततायी उसको कहते हैं जो पापी से भी बड़ा होता है और अत्यधिक क्रूर होता है, जो गाँवों को जला देता है लेकिन उसे दया नहीं आती, स्त्री-बच्चे तड़प-तड़प कर मारे जाते हैं)। अतः वह कहते हैं – मैं इतना बड़ा आततायी था, मैंने अपने इष्ट श्रीकृष्ण को बहुत पैने, नुकीले, सुई से भी ज्यादा चुभने वाले बाण मारे और उससे उनका कवच टूट गया था। भीष्म के बाण छोटे-मोटे नहीं थे, भीष्म के बाणों से तो हनुमान जी भी घायल हो गए थे। भीष्म जी ने प्रतिज्ञा की थी –

आज जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ।
तौं लाजौ गंगा-जननी को, सांतनु-सुत न कहाऊँ।
स्यंदन खंडि महारथ खंडौ, कपिध्वज सहित डुलाऊँ।

अर्जुन के रथ की ध्वजा पर जो कपि (वानर) बैठा है, उसको भी मैं परेशान कर दूँगा। उन्होंने जो तीक्ष्ण बाण मारे, उन बाणों की चोट से हनुमान जी रथ से नीचे आ गिरे और भीष्म पितामह से बोले – “महाबली भीष्म ! मुझे रावण के बाणों से वैसी पीड़ा नहीं हुयी, जैसी

तुम्हारे बाणों से हुई।" तो भीष्म ने ऐसे बाण मारे अपने इष्ट भगवान् श्रीकृष्ण को और उन बाणों से उनका कवच फट गया। भगवान् नर लीला कर रहे हैं, युद्ध में नर जैसा उनका सारा शरीर खून से लथपथ हो गया। *'क्षतज'* माने खून घावों से निकलता है, उससे उनका शरीर भर गया। जब भगवान् ने देख लिया कि आज भीष्म जिंदा रहेंगे तो महाभारत आज ही खत्म हो जायेगा, कोई भी जिंदा नहीं बचेगा। तब भगवान् भीष्म का वध करने के लिए दौड़े। वह भीष्म को मारने दौड़े जरूर थे लेकिन ये नाटक था। सूरदास जी ने एक पद में लिखा है –

वा पट पीत की फहरान ।
कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरत वह बान ॥
रथते उतरि अवनि आतुर ह्वै कच-रज की लपटान ।
मानो सिंह सैलतें निकस्यो, महामत्त गज जान ॥
जिन गुपाल मेरो प्रन राख्यो, मेटि बेद की कान ।
सोई सूर सहाय हमारे निकट भये हैं आन ॥

श्रीकृष्ण रथ से नीचे आ रहे हैं, उनका पीताम्बर ऊपर जा रहा है, यह छटा सूरदास जी ने वर्णन की है। बोले – वह पीताम्बर का फहराना अलग था, पीताम्बरधारी नीचे आ रहा है और पीताम्बर ऊपर जा रहा है, ऐसा हमने आजतक कभी नहीं देखा। प्राचीनकाल में रथ बहुत ऊँचे होते थे, दो मंजिल से भी ज्यादा। वहाँ से भगवान् क्रोध में कूदे। जब कोई ऊपर से कूदता है तो कपड़ा ऊपर उड़ता है, वह नीचे आता है। इस तरह भगवान् भीष्म को मारने के लिए रथ से कूद पड़े, इतने पर भी भीष्म रुके नहीं, उन्हें मारते रहे। भीष्म का ऐसा विक्रांत पराक्रम था कि उस दिन भगवान् को भी अपनी प्रतिज्ञा तोड़नी पड़ी और भीष्म की प्रतिज्ञा रखनी पड़ी। अतः भीष्म बोले – ऐसा कष्ट दिया मैंने अपने इष्ट को, मैं आततायी था, मेरे वध के लिए भगवान दौड़े – 'कहाँ है भीष्म? उसको मार डालो।' युद्ध हो रहा है, ऐसा लग रहा है दोनों शत्रु हैं लेकिन भीष्म की निष्ठा वही है कि जब तक मेरी साँसें चल रही हैं भगवान्

श्रीकृष्ण ही मेरी गति हैं। भगवान् स्वयं उनसे मिलने गए, जब वह शर शय्या पर पड़े थे। भगवान् को देखकर उनकी आँखों में अश्रु आ गए और श्रीकृष्ण से बोले – आ गए, तुम्हारी करुणा की आदत तुमको ले आयी। मैं तो आततायी था, मुझे मार डालना चाहिए था लेकिन तुम आ गए केशव ! अच्छा एक काम करो –

"स देवदेवो भगवान् प्रतीक्षतां
कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ।"

(भा. १/९/२४)

हे कृष्ण ! जब तक मैं शरीर नहीं छोड़ता हूँ, तुम यहीं खड़े रहो, यहाँ हमारी आँखों के सामने प्रतीक्षा करो। जब तक मेरा शरीर यहाँ हैं, मेरी साँसें चल रही हैं, मेरी आँखों के सामने खड़े रहो, चाहे मैं लड़ रहा हूँ, चाहे मैं मार रहा हूँ लेकिन मेरी एकमात्र गति तुम ही हो।'

कृष्ण अर्जुन को क्रोध दिलाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने ऐसा नाटक किया कि जब मेरे ऊपर चोट आयेगी तब अर्जुन को क्रोध आयेगा और तभी यह भीष्म को मारेगा क्योंकि पाण्डवों का कृष्ण से ज्यादा प्यारा कोई नहीं है, इसलिए जब तक मेरे ऊपर चोट नहीं आयेगी तब तक इसको भीष्म पर क्रोध नहीं आयेगा, जब तक यह भीष्म को मारेगा नहीं, भीष्म नहीं मरेंगे। बड़ी लम्बी दाव-पेंच की लड़ाई है। बाद में अर्जुन को क्रोध आया और अर्जुन भी कूद पड़े ऊँचे रथ से और दौड़े। देखा कि, कृष्ण धूल के समुद्र में घुसे जा रहे हैं। रथ जब चलते थे तो धूल उड़ती थी, रथ के पहियों से ***'कच-रज की लपटान'*** कृष्ण के बाल धूल से भर गए और अर्जुन ने दौड़कर के श्रीकृष्ण के चरण पकड़ लिए और बोले – जनार्दन ! मत दौड़ो, लेकिन कृष्ण रुक नहीं रहे हैं, दौड़ते जा रहे हैं, अर्जुन को खींचते ले जा रहे हैं। पूरी ताकत लगाकर अर्जुन रोक रहे हैं और अंत में उनके पाँव में लिपट गए लेकिन फिर भी वह रुक नहीं रहे हैं, वह चलते जा रहे हैं और कहते जा रहे हैं – 'नहीं, तू दादाजी पर दया कर रहा है, युद्ध नहीं कर रहा है, मैं

सब समझता हूँ। जब तक भीष्म नहीं मरेगा, महाभारत का निर्णय नहीं होगा, मुझे आज भीष्म को मार देना है।' अर्जुन बोले – प्रभो ! आप अपनी प्रतिज्ञा मत तोड़ो, आपने शस्त्र न छूने की प्रतिज्ञा की है। अब छू लिया तो छू लिया लेकिन मारो मत, भगवान् बोले – नहीं, मैं मारूँगा। अर्जुन बोले – अच्छा तो मैं ही मारूँगा आप लौट जाओ। भक्त और भगवान् में लड़ाई हो रही है, अर्जुन कहते हैं कि मैं मारूँगा, आज ही मारूँगा, अभी मारूँगा भीष्म को, आप लौट चलो। कृष्ण बोले – नहीं, तू दादाजी के नाते प्रेम करता है, मार नहीं पायेगा। जब बहुत बार उन्होंने कहा, बीसों बार कहा तब समझ गए कि अब ये मारेगा क्योंकि हमारे शरीर को खून से सना हुआ देख रहा है। इस प्रकार भगवान् ने यह नाटक किया।

श्रीकृष्ण के सारे के सारे कवच टूट-फूट गए थे, उनका सारा शरीर खून से भर गया था। ये सब देखकर के अर्जुन को क्रोध हुआ कि यह तो बड़ा अन्याय किया भीष्म ने, अब इनको मारना जरूर है। तब अर्जुन लौटे और चढ़ गए रथ पर, शिखंडी को आगे करके बाण मारने लग गए, शिखंडी आगे है और अर्जुन पीछे हैं। भीष्म ने कहा – ओहो ! ये बाण मुझे इतने पीड़ा दे रहे हैं, शिखंडी में यह ताकत नहीं है, ये तो अर्जुन के बाण हैं। जहाँ लगते थे शरीर पार करके जमीन में घुस जाते थे। बाण मारा, छाती में लगा तो छाती छेद करके जमीन में घुसा, पेट में मारा तो पेट छेदकर जमीन में घुसा। सारी शक्ति अर्जुन ने लगा दी थी। जो बाण जमीन में घुस जाता था, भीष्म उस पर टंग जाते थे, इसी तरह बाणों की शय्या बनी थी। सब बाण जमीन में घुस गए थे, ऐसा भयानाक युद्ध था और कृष्ण खड़े-खड़े मरवाते रहे, ये भगवान् का प्यार है। भीष्म जानते हैं कि ***'प्रसभमभिससार मद्वधार्थं'*** ये सब मुझे मारने के लिए हो रहा है परन्तु मुझे मृत्यु आवे, ये हम चाहते हैं। वे चाहे मरवा रहे हैं लेकिन मेरी गति तो एकमात्र कृष्ण ही रहेंगे, मुकुंद ही रहेंगे। ***'मुक्तिं ददाति इति मुकुन्दः'*** वह हर हालत में मुक्ति देते हैं, भक्त लड़ते हैं तो

भी वे मुक्ति देते हैं। अतः वह ऐसा जो मुकुंद है, जो हर हालत में मुक्ति देता है, वह मेरी गति है।

हम लोगों को इसी निष्ठा के साथ चलना चाहिए कि चाहे प्राण चले जाएँ लेकिन कृष्ण ही हमारी गति हैं। जो जहाँ है, अपनी सेवा-भजन में लगा रहे, उसको छोड़े नहीं, प्राण छूट जाएँ लेकिन सेवा, भजन नहीं छूटे। इसका परिणाम क्या होगा? एक दिन जरूर श्रीकृष्ण आएँगे, अवश्य आएँगे क्योंकि भगवान् भाव के आधीन हैं और भक्तिभाव से पूर्ण हृदय में शीघ्र भगवान् आते हैं।

'ममाहम्' रहित मार्ग ही निष्कण्टक

भगवान् का आश्रय क्या है? इसको समझना ही कठिन है, फिर इसका पालन करना तो और भी अत्यन्त कठिन है। उस आश्रय का पालन केवल भगवान् की कृपा से ही होता है क्योंकि ये जितनी भी देह, गेहादि की आसक्तियाँ हैं, ये भगवान् से दूर करती हैं। उन आसक्तियों को दूर भगवान् करते हैं, जीव की सामर्थ्य नहीं है। यह बात श्रीमद्भागवत में कही गयी है कि घर में आसक्ति, घर में प्रेम होना यह 'गेहरति' है। सबसे पहले घर है शरीर, अगर इसमें रति-आसक्ति है, तो तुम्हें भगवान् नहीं मिल सकते। मनुष्य अपने-आप को भक्त समझता है, विरक्त समझ लेता है, यह धोखा है। शब्द कड़े अवश्य हैं लेकिन यथार्थ बात यही है कि हम लोग धोखे में हैं। ये 'गेहरति' क्या है?

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ॥

(भा. ३/५/४३)

इस धोखे में सारा संसार डूब रहा है, क्या साधु? क्या संत? क्या विरक्त? क्या गृहस्थ? क्या विद्वान्? सब इसी धोखे में हैं। भगवान् इस नगर (शरीर) में रह रहे हैं, दूर नहीं हैं, 'पुरी' (नगर) से तात्पर्य है स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर। इन तीनों शरीरों का जो एकत्री भाव है उसे संघात कहते हैं। संघात अर्थात् इन तीनों शरीरों का एक समूह। उसी को संघात या क्षेत्र भी कहते हैं। गीता में इसे बताया गया है –

महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥

(गी. १३/५,६)

इन तीनों शरीरों का एकत्री भाव, उसी में चेतना भी है, धृति भी है, इच्छा भी है, द्वेष है, सुख-दुःख भी है, ये सब मिलकर क्षेत्र कहलाते हैं। तो 'असति देहगेहे' माने ये सब असत्य हैं, इसमें 'ममाहं' बुद्धि जो जीव की हो गयी है, वह दुराग्रह (दुष्ट आग्रह) है। इस दुष्ट आग्रह से भगवान् दूर हैं और दूर ही नहीं बहुत दूर हैं, अनन्त दूरी है। हम अपने आपको महात्मा, विरक्त, साधु, विद्वान्, रसिक या भक्त घोषित करते हैं, तो हमसे भगवान् बहुत दूर हैं। यहाँ व्याकरणानुसार 'सु' प्रत्यय लगा दिया कि 'सुदूर' अर्थात् भगवान् अनन्त दूरी पर स्थित हैं। हमलोग इस 'अहंता' का ही पोषण कर रहे हैं और सिद्ध करते हैं कि हम बड़े भक्तराज हैं। यह अहंता और ममता का नंगा प्रदर्शन है। ये सब 'ममाहं' का दुराग्रह है। कुन्ती जी ने स्पष्ट कहा है कि भगवान् तो अकिञ्चन लोगों को ही मिलते हैं, वह अकिंचनों के धन हैं –

नमोऽकिञ्चनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ।
आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥

(भा. १/८/२७)

यही बात महापुरुषों ने भी कहा है कि गरीब बनो, तब गरीब निवाज की कृपा मिलेगी।

नारायन मैं सत्य कहौं भुजा उठाय के आज ।
जो तू बने गरीब तो मिलैं गरीब निवाज ॥

(नारायण स्वामी)

इसलिए जब तक तुम्हारे अन्दर मद है – जन्म का मद, ऐश्वर्य का मद, बड़प्पन (मालकियत) का मद, श्री (धन) का मद, विद्वता का मद (हम बड़े विद्वान् हैं) तब तक तुम अकिञ्चन नहीं हो।

जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ।
नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिञ्चनगोचरम् ॥

(भा. १/८/२६)

इसलिए अभी तुम भगवान् का नाम लेने के लायक भी नहीं हो, जिसके अन्दर 'मद' है, वह भगवान् का नाम लेने का भी अधिकारी नहीं है। भगवान् अकिञ्चनगोचर हैं, केवल अकिञ्चन को ही मिलते हैं। जिसके अन्दर 'मद' है, उससे भगवान् दूर ही नहीं सुदूर (अनन्त दूर) हैं। भगवान् तो ***'अकिञ्चनवित्ताय'*** निर्धनों के धन हैं। इसलिए सबसे पहले भागवत में राजा परीक्षित से शुकदेव जी ने यही कहा था –

तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद् यत आत्मपातः ॥

(भा. २/१/३९)

शुकदेव जी बोले – तुम भगवान् का भजन तो तब करोगे जब कहीं आसक्ति नहीं रहेगी। देह, गेहादि में कहीं भी आसक्ति होना आत्मपात है, पतन है। हम सिद्ध कर रहे हैं हम भक्त हैं, ज्ञानी हैं, रसिक हैं, बड़े महात्मा हैं – ये पतन है और इस पतन को बेचारे साधारण लोग नहीं समझ पाते। इस पतन को छिपाकर हम अपने को विरक्त समझते हैं, इस पतन को छिपाना आत्मनाश है। इसलिए जो शुकदेव जी परमहंसों के चूड़ामणि हैं, उन्होंने मनुष्य की छोटी-छोटी बातें पकड़ी, तुम कैसे सोते हो? क्या खाते हो? क्या तुम्हारा जीवन स्तर (living standard) है? बढ़िया पलंग है, अच्छा तकिया लगाते हो, इसकी आसक्ति क्यों करते हो? ये पतन है। हम भक्त कैसे बन सकते हैं? रसिक कैसे बन सकते हैं? हमारी गाड़ी खाई की ओर जा रही है और हम सिद्ध कर रहे हैं कि हम हिमालय की ओर चढ़ रहे हैं, ये सब पतन है। शुकदेव जी ने छोटी-छोटी बातों को पकड़ा कि तुम (भगवत्प्राप्ति) कृष्ण प्राप्ति करने चले हो लेकिन तुम्हें बढ़िया पलंग चाहिए, बढ़िया भोजन चाहिए, बढ़िया कपड़े चाहिए जबकि शुकदेव जी कृष्ण रस में डूबे हुए हैं, उस रस में डूबे हैं और फिर भी वे हमारी छोटी-छोटी बात बता रहे हैं। क्यों? क्योंकि जीव इन्हीं सबमें फँसा रहता है, ये सच्चाई है, हमारी भक्ति की पोल है, रसिकता की पोल है ये। हम लड्डू-पेड़ा मार रहे हैं, ये रसिकता की पोल है। हम इन्द्रिय-लोलुप हैं, ये इसकी पोल है। हम विषय रस रसिक

हैं, इसकी ये पोल है और इसी में उम्र चली जाती है।

आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ।
तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥

(भा. २/३/१७)

अरे! हमसे पेड़ अच्छे हैं, हमसे कुत्ते अच्छे हैं, ये बात शुकदेव जी ने भागवत में कहा, जो भगवद् रस कहने आये थे। उन्होंने हम लोगों की छोटी-छोटी बातों को पकड़ा कि तुम कैसे महात्मा हो? तुम कैसे विरक्त हो? तुम कैसे भक्त हो? तुम कैसे रसिक हो? पलंग-तकिया, लड्डू-पेड़ा, इन्द्रियों के भोगों के लिए दिन-रात प्रयत्न कर रहे हो और भक्तराज बनते हो –

तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ।
न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥

(भा. २/३/१८)

गाँवों में रहने वाले पशु क्या हमसे अच्छे नहीं हैं? ग्राम्य पशु अर्थात् गधे, कुत्ते, शूकर आदि जो गाँव में रहते हैं और मल खाकर मस्त घूमते हैं। क्या शूकरी एक साथ बारह बच्चे पैदा नहीं करती है? एक राजा को जो सुख डनलप के गद्दे पर सोने में मिलता है, वही सुख एक ग्राम्य पशु को मल-मूत्र में, मिट्टी में मिलता है तो क्या हम पशु नहीं हैं? हम लोगों की सारी उम्र केवल इन्हीं भोगों के साधनों को इकट्ठा करने में चली जाती है। मरने के किनारे आ गये और भोग साधनों को इकट्ठा कर रहे हैं। इसलिए शुकदेव जी बोले – अरे! तुमसे कुत्ता अच्छा है, मल खाने वाला सुअर तुमसे अच्छा है, उसको मनुष्य शरीर नहीं मिला है, तुमको तो भगवान् ने मनुष्य बनाया है और तुम मनुष्य बनकर भी विष्ठा में पड़े हो। जो तुम्हारी भोगों से, मल-मूत्र से (स्त्री के साथ भोग भोगने में क्या मिलता है? केवल मल-मूत्र), धन से तृप्ति नहीं हो रही तो तुमसे गधा अच्छा है।

श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ।
न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥

(भा. २/३/१९)

भगवान् ने तुमको मनुष्य बनाया और तुम गधों से भी नीच बन गये, कुत्तों से भी नीच बन गये हो और इतने पर भी 'अहंभाव' रखते हो कि हम बड़े ऊँचे महात्मा हैं, हम बड़े ऊँचे पण्डित हैं, बड़े विरक्त हैं, बड़े भक्त हैं, बड़े रसिक हैं, ये सब आत्मपात है। अपने-आपको धोखा देना और समाज को धोखा देना है। इसी बात को व्यास जी आगे लिखते हैं कि तुम पहचानो, तुम कौन हो?

बिले बतोरुक्रमविक्रमान् ये न श्रृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ।
जिह्वासती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥

(भा. २/३/२०)

तुम्हारे कान सर्प के बिल हैं, जिनसे टेलीविजन के सामने बिस्तर पर पड़े हुए फिल्मी गाना सुन रहे हो, संसारी विषय वार्ताओं को सुन रहे हो, पराई निन्दा सुन रहे हो तो तुम्हारे कान सर्प के बिल हैं। इससे ज्यादा क्या पोल खोली जा सकती है हम लोगों की, तुम्हारी जीभ क्या है? मेंढक की जीभ है। मेंढक कीड़ों को खाता है। हम मेंढक से भी गिरे हुए हैं, सबेरे से शाम तक भोजन की सामग्रियाँ बन रही हैं, आज इस होटल में जा रहे, कल उस होटल में। ये क्या है? दिन-रात इन्द्रियोत्सव में समय जा रहा है। यदि भगवान् की भक्ति नहीं है तो हमारा सिर मनुष्य का नहीं है, मुर्दे का सिर है, चाहे राजा है उसके सिर पर राजमुकुट बंधा हुआ है लेकिन वह मुर्दे का सिर है।

भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युत्तमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ।
शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥

(भा. २/३/२१)

अगर चक्रवर्ती सम्राट का भी सिर है तो वह भी मुर्दे का सिर है, जो भगवान् को, भक्तों, सन्तों को नमस्कार नहीं करता। तुम अपने को

पहचानो, तुम क्या हो? तुम्हारे हाथ मुर्दे के हाथ हैं, जो भगवान् की सेवा, भक्तों की सेवा, गौसेवा आदि कार्यों में नहीं लगते। भले ही उसमें हीरे-मोती की अंगूठी पहन रखी है, बड़ी महँगी घड़ी पहन रखी है, ये पतन है तुम्हारा। इस पतन को तुम पहचान नहीं सकते हो। तुम्हारी आँखें मुर्दे की आँखें हैं क्योंकि भगवान् और भगवद्-भक्तों का दर्शन नहीं करती हैं।

बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ।
पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥

(भा. २/३/२२)

तुम्हारी टाँगें पेड़ों की तरह जड़ हैं, जो भगवान के धाम, तीर्थों में न चलकर संसारी कामों में घूम रही हैं। तुम्हारा हृदय पत्थर का है, तुम्हारा शरीर जो साधु-संतों की चरणरज धारण नहीं करता, वह मुर्दा है।

जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ।
श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥

(भा. २/३/२३)

ये बातें शुकदेव जी ने सबसे पहले भागवत में कही हैं, कृष्णचरित्र पीछे सुनाया, सबसे पहले ये बातें कही गई हैं, तुम पहचानो, तुम कौन हो? पहले अपने-आप को पहचानो कि हम कुत्ते और गधों से भी ज्यादा नीच हैं और हम अपने आपको भक्तराज साबित करते हैं। खुला शब्द है – केवल आत्मनाश है, पतन है और कुछ नहीं है। सबसे पहले उन्होंने दैन्य सिखाया कि तुम सीखो कि हम गधे और कुत्ते से भी नीच हैं, शूकर से भी नीच हैं, जो मल खाता है। इसलिए चैतन्य महाप्रभु जी ने कहा –*'तृणादपि सुनीचेन'* हम तिनका से भी ज्यादा नीच हैं, तिनका जड़ चीज है, हम जड़ों से भी नीच हैं, महाजड़ हैं। हमलोग भागवत कथा कहते हैं लेकिन समझ नहीं पाते। 'दैन्य' सबके लिए जरूरी है। जो ब्रह्मा जी जगत्पिता हैं, वह भागवत में स्वयं कह रहे हैं –

तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ।
यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥

(भा. २/५/१२)

ब्रह्मा जी कहते हैं – भगवान् की दुर्जर माया से मोहित होकर लोग मुझे जगद्गुरु कहते हैं अर्थात् स्वयं जगत्पिता ब्रह्मा जी जगद्गुरु की पदवी से घबड़ाते हैं और हम जैसे भुक्खड़ लोग जगद्गुरु की पदवी चाहते हैं। जगद्गुरु बनने की भूख है हमको, अपनी भूख को कभी तृप्त नहीं कर पाये। ब्रह्मा जी बोले – हमको लोग जगद्गुरु कहते हैं, ये बड़ा आश्चर्य है। क्यों कहते हैं? भगवान् की माया से मोहित होकर। जबकि मैं ब्रह्मा कुछ भी नही हूँ, लोग मुझको जगद्गुरु कहते हैं, ये शुद्ध माया है। भगवान् के अतिरिक्त किसी सत्ता को मानना, ये शुद्ध माया है। जगद्गुरु तो एकमात्र भगवान् श्रीकृष्ण हैं ***'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्'*** हम जैसे मक्खी-मच्छर क्या जगद्गुरु बन सकते हैं? जब स्वयं ब्रह्मा जगद्गुरु की पदवी से घबडाते हैं तो हम जैसे जंतुओं की बात ही क्या है। हमलोग तो पाँच सौ का नोट देखकर मोहित हो जाते हैं, ये शुद्ध माया है। हमलोग दुष्ट बुद्धि वाले हैं 'ममाहं' में डूबे हुए हैं, अभी हम अकिञ्चन बनना ही नहीं समझ पाए। कुन्ती माता कहती हैं – भगवान् तो केवल अकिञ्चन को ही मिलते हैं। भगवान् को हम ठग नहीं सकते, मनुष्य जब अकिञ्चन बनेगा, छोटा बनेगा, गरीब बनेगा तभी भगवान् मिलेंगे अन्यथा कभी नहीं मिलेंगे। सृष्टि का एक कण भी हमारे पास न रह जाए, तब हम अकिञ्चन हैं। हमलोग साधु बनकर बड़े-बड़े आश्रम बनाते हैं, शिष्यों की फौज इकठ्ठी करते हैं, यह निरपेक्षता नहीं है, न ही भक्ति है, यह केवल आत्मपात है। कम से कम अपनी स्थिति समझना चाहिए हम लोगों को। गाड़ी खाई में जा रही है और हम समझ रहे हैं कि हम ऊपर हिमालय पर चढ़ रहे हैं।

भगवान् बोले – वहाँ मेरी भक्ति आ ही नहीं सकती। हाँ, आश्रम बना लो, पैसा इकठ्ठा कर लो, बैंक में पैसा जमा कर लो, पैसे की भक्ति

आ जायेगी, बेटा-बेटी की भक्ति आ जायेगी परन्तु मेरी भक्ति नहीं आयेगी। जब तक कामनाएँ हैं, तुम निरपेक्ष नहीं रहोगे, जब कामनाएँ नहीं रहेंगी, तब तुम निराशिष होगे, नहीं तो इसके पहले कामनाएँ नचायेंगीं। तुलसीदास जी ने एक पद में कहा है –

कैसे देउँ नाथहिं खोरि ।
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि ।
देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संग-बस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं सचि-पचि सुकृत-सिला बटोरि ।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि ॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि ।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि ।
निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि ॥

(तुलसी वि.प. १५८)

हे प्रभु ! मैं आपको कैसे दोष दूँ? आपने तो मुझे मनुष्य बनाया और मनुष्य बनने के बाद भी हम गधे, कुत्ते, ऊँट की तरह घूम रहे हैं। भक्ति तो हमने छोड़ ही दी है, भक्ति को त्यागपत्र दे दिया है, क्योंकि चारों ओर से कामनाएँ नचा रही हैं। 'लोलुप' माने जो कामनाओं के पीछे बिल्कुल पागल हो गया है, जो अत्यधिक माया से खिंच गया है, उसको लोलुप कहते हैं। मनुष्य नाचता क्यों है? लोलुपता के कारण। उसका मन बिक गया है, इसलिए नाचता है। हमारी भक्ति छूट गयी है, हमलोग भक्ति की केवल ऐक्टिंग कर रहे हैं पेट पालने के लिए, भक्ति आदि कुछ नहीं है। वेष बना लिया साधु का लेकिन भक्ति बिल्कुल नहीं है। भक्ति है तो 'अहंता' की, अपने मान-सम्मान की। 'अपने को पूज्य साबित

करना' इस पर बहुत प्रीति है, कोई महन्त बनता है, कोई महामण्डलेश्वर बनता है, कोई जगद्गुरु बनता है। भगवान् की पूजा करने में प्रेम नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं कि मैं दूसरों को शिक्षा (उपदेश) देता हूँ– त्याग करो, त्याग करो लेकिन स्वयं उन उपदेशों को क्रिया में धारण नहीं करता हूँ, स्वयं कामनाओं के कारण नाच रहा हूँ। हे प्रभु! मेरी मूढ़ता तो देखो। मैं बिलकुल खोखला हूँ, भक्ति को छोड़ बैठा हूँ। दिन-रात कपट करता हूँ। हृदय का स्नेह जिन पापों में है, उनको छिपाये रहता हूँ। अगर संग के कारण कोई शुभ कर्म बन गया, अपने कारण नहीं, किसी अच्छे संग से तो गा-गाकर सारी दुनिया को सुनाता हूँ; ताकि सब लोग जान जायें कि मैं कितना बड़ा भक्त हूँ। सबको सुनाता हूँ– "सुनो, सुनो भाई! देखो, मैंने ये अच्छा कार्य किया, मैं ऐसा आन्दोलन चला रहा हूँ, मैं समाज में ऐसा सुधार कर रहा हूँ, मैं देश का ऐसा सेवक हूँ, इस प्रकार मैं सभी को अपना यश कहकर सुनाता रहता हूँ। हम लोगों की भी यही स्थिति है। पहली बात तो शरीर से कुछ अच्छा काम होता ही नहीं है, अगर कुछ अच्छा काम हो भी गया है तो उसको कहकर नष्ट कर देते हैं। अगर जीवन में कोई सुकृत बन गया तो दम्भ (दिखावापन) के कारण उसका बखान करते हैं – देखो, मैंने ये किया, मैंने वो किया और इस तरह दम्भ करके सब सुकृतों को नष्ट कर देते हैं। दम्भ के कारण हमने भक्ति को तामस बना दिया –

अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥

(भा. ३/२९/८)

'हिंसा' माने केवल कत्ल करना ही नहीं होता है, किसी का यश नष्ट करना, किसी की निन्दा करना, ये हिंसा है। *'दम्भ'* (दिखावा) – कोई सेठ आया और उसके सामने प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए माला करने लग गए अथवा पाठ-पूजा करने लग गए, यह दम्भ है। *'मात्सर्य'* (ईर्ष्या) – किसी की प्रशंसा को सुनकर हम चिढ़ रहे हैं, यह मात्सर्य है। इस प्रकार ये

तीन चीजें भक्ति को तामस कर देती हैं। उसी को गोस्वामी जी कहते हैं कि अगर एक दो काम जीवन में अच्छे बन भी गए तो उसको हमारा जो *'दम्भ'* है, उस सुकृत को निकाल कर फेंक देता है। आज संसार में हर आदमी अपना प्रचार (advertisement) करता है, यह दम्भ है जो भक्ति को तामस कर देता है। हमलोग अपने सुकृत को स्वयं नष्ट करते हैं। तुलसीदास जी कहते हैं – हे दयानिधि ! यह मेरी स्थिति है, जीवन शून्य हो गया और उसके बाद भी हालत यह है; कुछ सुकृत थे वे भी दम्भ, पाखण्ड ने नष्ट कर दिए, फिर भी लोभ है, लोभ नहीं गया, वह मन को नचाता है। जैसे मदारी बन्दर को नचाता है, वैसे ही मैं लोभ रूपी मदारी का बन्दर बनकर नाच रहा हूँ। क्यों नाचता हूँ? क्योंकि आशा की डोर गले में बंधी हुई है। जैसे बन्दर के गले में डोर बंधी रहती है, इसलिए बन्दर भाग नहीं पाता है, अतः मैं कैसे भाग सकता हूँ, क्योंकि आशा की रस्सियों में मेरा गला बंधा हुआ है, इसलिए नाच रहा हूँ और नाचता रहूँगा। इस तरह से मर जाऊँगा लेकिन नाच नहीं छोड़ूँगा। सूरदास जी ने भी यही कहा –

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ बिषय की माल ॥

(सूरदास जी)

जब तक आशा है तब तक जीव नाचता रहता है। अनन्त जन्म इस आशा रूपी पिशाची ने खा लिये। इसीलिये दत्तात्रेय जी ने एक वेश्या (पिंगला) को गुरु बनाया, उससे शिक्षा ली कि –

आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।
यथा सञ्छिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला ॥

(भा. ११/८/४४)

सबसे बड़ा सुख है – निराश हो जाओ, इस संसार से सुख की कोई आशा मत करो। आशा तुमको अनन्त दुःख देगी, देती आयी है, दे रही है और देगी। अन्त में तुलसीदास जी कहते हैं – हे प्रभो ! इतने पर भी

मैं तुम्हारा भक्त कहाता हूँ, लज्जा को तो मैंने घोल कर पी लिया है, बेशर्मी की पराकाष्ठा हो गयी है, दम्भ है, 'अहंता-ममता' में सारा जीवन जा रहा है और फिर भी तुम्हारा भक्त कहलाता हूँ। इतने अवगुण मुझमें भरे हैं, फिर भी ये बेशर्मी हमसे नहीं छूट रही है। इस जीवन में सब गुण छूट गये लेकिन ये बेशर्मी नहीं छूट पायी, अब मैं गुण कहाँ से लाऊँ। इसलिए हे करुणासिंधो ! ***'निलजता पर रीझि रघुबर'*** हमारे पास कोई गुण तो नहीं है, आप करुणा के समुद्र हो, हमारी इस बेशर्मी पर ही रीझ जाओ।

आत्म-निरीक्षण

जिधर की ओर मुख रहता है, उधर ही दिखाई पड़ता है, एक नियम है। हम बहिर्मुख हैं, इसकी पहचान है – केवल बाहर की चीजें दिखायी देगीं, बाहर की बातें सोचेंगे, बाहर के गुण-दोषों का चिन्तन करेंगे। हम किसी के गुणों को देखते हैं तो बहिर्मुख हैं और किसी के दोषों को देखते हैं तब भी बहिर्मुख हैं और मनुष्य अपने गुणों को देखता है तो भी बहिर्मुख है लेकिन अपने दोषों को देखना बहिर्मुखता नहीं है क्योंकि भीतर दोष ही दोष भरे हैं। इसीलिये मनुष्य जब-तक अपने दोष नहीं देखता है तब तक वह बहिर्मुख ही है। हमारे भीतर अनन्त दोष भरे हैं, गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा –***'मानस रोग कछुक मैं गाए।'*** मानस रोग तो बहुत हैं, उनकी गिनती ही नहीं है परन्तु मैंने तो उनका थोड़ा ही वर्णन किया है। जैसे – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सरादि; जब मनुष्य अन्तर्मुख हो जाता है तो उसको केवल अपने ही दोष दिखाई पड़ते हैं। मोह क्या है? यह जीव देख नहीं पाता है, इसलिए हर आदमी बहिर्मुख है। जिस दिन अपने मोह को देखता है, उसी दिन से उसकी अंतर्मुखता शुरू होती है और अपने दोष केवल सत्संग से ही दिखाई पड़ते हैं। रामायण में भी तुलसीदास जी ने लिखा है – ***'सदगुर बैद बचन बिस्वासा।'*** सत्संग इसीलिए किया जाता है ***'बिनु सतसंग बिबेक न होई।'*** सत्संग के बिना मनुष्य को अपने दोषों का पता नहीं चलता है, इसलिए वह सदा बहिर्मुख बना रहता है; चाहे पढ़-लिखकर विद्वान् बन जाए, चाहे साधु-सन्यासी बन जाए, आचार्य बन जाए, ब्रह्मज्ञानी बन जाए, कुछ भी बन जाए लेकिन वह सदा बहिर्मुख बना रहता है बल्कि इनसे और ज्यादा बहिर्मुखता आ जाती है कि हम पंडित हैं, पढ़े-लिखे विद्वान् हैं, कथावाचक हैं, विरक्त हैं, हम सन्यासी हैं, हम त्यागी हैं, हम भक्त हैं; इससे 'अहं' और बढ़करके बहिर्मुखता बढ़ जाती है। ऐसा सोचना कि हम ज्ञानी हैं, वैष्णव हैं, भक्तराज हैं, ये सब

बहिर्मुखता है। इसीलिए सूरदास जी ने कहा –

"तिलक लगाये चले स्वामी बन, बिषयन के मुख जोये ।"

तिलक लगा लिया और सोचने लगे हम वैष्णव हैं, हम स्वामी जी हैं, हम मंडलेश्वर हैं किन्तु और ज्यादा विषयी बन गये और ज्यादा बहिर्मुख बन गये। केवल भोग भोगने में कुशल (चतुर) हो गए हैं और भगवत्प्राप्ति में दक्षता नहीं दिखाई पड़ती है। हमलोगों की स्थिति का वर्णन भागवत माहात्म्य में आया है कि कलियुग में प्रायः पंडित लोग (कथावाचक आदि) पशुवत् रमण करते हैं, पुत्रोत्पन्न में कुशल और मुक्ति साधन (भक्ति करने) में अदक्ष हो जाते हैं।

पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ।
पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥

(भा. माहा. १/७५)

ये सब चीजें मनुष्य को और ज्यादा बहिर्मुख बना देती हैं, यह उपनिषदों में भी लिखा है –

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥

(ईशा. ९)

'अविद्या' माया में जो हैं, वे तो अन्धकार में हैं ही, पर उनसे भी ज्यादा अज्ञानी वे बन जाते हैं जो विद्या की उपासना करते हैं। पढ़ते-लिखते हैं या विरक्त बन गये, साधु बन गये, ये सब विद्या की उपासना है क्योंकि इनसे उनका 'अहं' और बढ़ जाता है, इसलिए एक तो पहले से ही अन्धकार में थे और उसपर विद्या का अहंकार और बढ़ गया। इसलिए जो विद्या की उपासना करते हैं और भोगी हैं, वे और अधिक अन्धकार में जाते हैं। इस बात को भागवत में व्यास जी ने भी कहा है कि ये लोग और ज्यादा अहंकार में चले जाते हैं –

विद्यातपोवित्तवपुर्वयः कुलैः
सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेतरैः ।
स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः
स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥

(भा. ४/३/१७)

उनकी बुद्धि और ज्यादा नष्ट हो जाती है जो 'अहं' करते हैं विद्या का, तपस्या का, वैराग्य का, अच्छे कुल में जन्म होने का। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि उनकी बुद्धि में 'ऐंठ' आ जाती है। हम बड़े ऊँचे विद्वान् हैं और दूसरों को फटकार देते हैं, चल-चल हमको ज्ञान देता है, हम तो खुद ही विद्वान् हैं। हमको क्या ज्ञान देता है? हम सब जानते हैं, तो जो ऐसे शब्द बोला करते हैं वे और ज्यादा अंधकार में हैं। बड़े विद्वान् हैं, तपस्या किया है, वैराग्य किया है, धन आ गया, सुन्दर अवस्था है, अच्छा कुल है, आचार्य हैं, ब्राह्मण हैं, तो इस अच्छे कुल के अभिमान में किसी को भी फटकार देते हैं कि हमसे क्या बोलता है? हम ब्राह्मण हैं, आचार्य हैं। इससे बुद्धि नष्ट हो जाती है। इसलिए रामायण में कहा –

कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई ।
सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई ॥

(रा.मा. उत्तर. ५४)

करोड़ों विरक्त हो जाते हैं लेकिन सच्चा ज्ञान किसी को नहीं होता, एकाध किसी को होता है तो उसमें ऐंठ आ जाती है, 'अहं' आ जाता है, बुद्धि स्तब्ध हो जाती है। 'स्तब्ध' माने ऐंठ। अब वह बुद्धि झुकेगी नहीं, स्तब्ध कहते हैं स्तम्भ गुण को, जैसे लोहे का खम्बा होता है वह टूट जाएगा लेकिन झुकेगा नहीं, तो ये सब चीजें मनुष्य को झुकने नहीं देती हैं। किसी उर्दू शायर ने कहा –

"लोच का नाम जिंदगी । अकड़ाव का नाम मुर्दानगी ॥"

वैसे ही स्तब्ध भाव आ गया, अब मनुष्य मुर्दा बन जाएगा। जैसे

मुर्दा शरीर के हाथ-पाँव अकड़ जाते हैं, झुकते नहीं हैं। इसी तरह ये स्तब्ध (ऐंठभाव) मनुष्य को झुकने नहीं देता है। इसीलिए भक्तिमार्ग में इसे दोष बताया गया है –

भगति पच्छ हठ नहिं सठताई ।
दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ॥

(रा.मा. उत्तर. ४६)

हम किसी बात पर अड़ गए तो समझ लो कि हम मुर्दा बन गये, कोई व्यक्ति अड़ रहा है, वाद-विवाद कर रहा है, ये मुर्दानगी है। इसमें हमलोग फँसे रहते हैं, अपनी बात को सही करने के लिए, दुनियाभर के तर्क-वितर्क करते हैं, इससे 'अहं' बढ़ता है। इसलिए अपने मोह को जीव नहीं जान पाता है और सारे जीवन भर बहिर्मुख ही बना रहता है। जब अन्तर्मुख होने लग जाता है तो उसको अपने दोष दिखने लगते हैं। कबीरदास जी का एक छोटा सा दोहा है लेकिन वेद-पुराण का सार है –

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय ।
जो देखा घट आपना, मुझसे बुरा न कोय ॥

यह अन्तर्मुखता की पहचान है। जब आदमी अपने को देखने लग जाता है तो पग-पग पर उसे हजारों दोष दिखने लगते हैं। जैसे हम बैठे बात कर रहे हैं, तो प्रभु में ध्यान कहाँ है? इष्ट का ध्यान किसी को हर समय कहाँ होता है? गाते हैं तो भी नहीं होता है। गा रहे हैं ***'मोर मुकुट मकराकृति कुण्डल'*** और सोच रहे हैं इधर-उधर की बातें कि उसने हमसे ऐसा कहा था, ये सब विचार बहिर्मुखता के हैं। इस प्रकार जीव सारे जीवन भर अन्तर्मुख नहीं हो पाता है। वैराग्य, पढ़ना-लिखना, ज्ञानी बन जाना – ये सब बातें जीव में स्तब्ध (ऐंठभाव) पैदा कर देती हैं और उससे नुकसान यह होता है कि 'हठ' आ जाता है, शठता आ जाती है, अकड़ाव आ जाता है। जैसा कि तुलसीदास जी ने कहा –

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्रीरघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत-सुभाव गहौंगो ॥

जथालाभसंतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो।
पर-हित-निरत निरंतर, मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥
परुष बचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन नहिं दोष कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
'तुलसिदास' प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि-भगति लहौंगो॥

(तुलसी वि.प. १७२)

अगर हमको अपनी बेइज्जती की बात सुनकर, अपनी निन्दा सुनकर, गाली सुनकर हृदय में दाह उत्पन्न होता है तो ये बहिर्मुखता है। इसी प्रकार विगत मान होना, सम हो जाना, हृदय में शीतलता आ जाना, ये अन्तर्मुखता है। जैसे दत्तात्रेय जी ने कहा कि साधु या भक्त कौन है? साधु जलवत् स्वच्छ होता है, निर्मल होता है –

स्वच्छः प्रकृतितः स्निग्धो माधुर्यस्तीर्थभूर्नृणाम्।
मुनिः पुनात्यपां मित्रमीक्षोपस्पर्शकीर्तनैः॥

(भा. ११/७/४४)

भक्त सदा मधुर बना रहता है, ऐसा नहीं कि दूसरों को फटकारता है, ये तो जिसमें ऐंठ भाव होता है, वह कहता है – चल-चल, तू क्या जानता है? हम सब जानते हैं। इस तरह अपनी विद्या की ऐंठ में भन-भनाता रहता है, गृहस्थियों से कहता है – चल-चल तू संसारी हमारे पास कहाँ से आ गया है। ये सब जितनी चीजें हैं, ये अग्नि की तरह जलाती हैं, इसी को मोह कहते हैं या बहिर्मुखता कहते हैं। मोह करता क्या है?

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत॥

(गी. १४/९)

यह मोह ज्ञान को ढक देता है और जीव को प्रमाद में लगा देता है। बहस करते रहो, लड़ते-झगड़ते रहो, द्वेष करते रहो, ये मोह है, ज्ञान को ढक दिया, अब उल्लू की तरह रात भर घूमते रहो।

ममता तरुन तमी अँधिआरी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥

(रा.मा. सुन्दर. ४७)

रात को उल्लू घूमा करते हैं। ममता काली रात है; शरीर में ममता हो गयी, परिवार में, स्त्री, बेटा-बेटी में ममता हो गयी तो लोग आपस में लड़ते हैं। तूने हमारे छोरा (लड़का) को गाली दे दी, हमारी छोरी (लड़की) को मार दिया, इस प्रकार राग-द्वेष के उल्लू घूमा करते हैं क्योंकि ममता की काली रात आ गयी। इसमें कभी ज्ञान ही नहीं हो सकता। ये सब मोह है। अपने मोह को नहीं जान पाता है जीव। जब मोह को जानने लगता है तो अंतर्मुखता होने लगती है। बस इतना ही सीख ले सत्संग में जा करके।

जाने ते छीजहिं कछु पापी । नास न पावहिं जन परितापी ॥

(रा.मा. उत्तर. १२२)

इससे अपने-आप सब दोष चले जाते हैं, अपने दोष दिखायी पड़ने लग जाएँ तो सब विकार चले जाएँगे लेकिन वे दिखाई नहीं पड़ते हैं क्योंकि मोह ने ज्ञान ढक रखा है। खाली बहिर्मुखता के कारण बाहर ही बाहर दिखायी पड़ता है। छोटी-छोटी क्रिया में मोह देखना चाहिए। जैसे कि –

नियतस्य तु सन्न्यासः कर्मणो नोपपद्यते ।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥

(गी. १८/७)

मान लो अपने कमरे में बुहारी (झाड़ू) लगाना है और हम सबेरे से मोह में पड़े हैं; 'अब उठेंगे-अब उठेंगे' जाग रहे हैं और जान रहे हैं कि देर हो रही है लेकिन फिर भी मोह में पड़े हैं और सोचते हैं कुछ देर में जाएँगे। तो यह कर्म का त्याग है अर्थात् मोह है। छोटी-छोटी चीजों में देर कर देना मोह है। निद्रा, प्रमाद, आलस्य आदि ये सब मोह हैं। कोई सामाजिक कार्य हो रहा है, चार आदमी काम कर रहे हैं और हम बैठे देख रहे हैं तो ये मोह है क्योंकि कर्म का त्याग कर दिया, यह तामस

त्याग है। इसलिए मोह को हर क्रिया में ढूँढ़ना चाहिए, अपने भीतर ढूँढ़ना चाहिए। अनन्त मोह है, अनन्त अन्धकार है। अनेक रूप धारण करके घुसा रहता है। अच्छाई का रूप बनाकर आता है इसलिए कोई उसे पहचान नहीं पाता है।

भक्ति का प्रभाव

भगवद्भक्त के सामने कोई आसुरी शक्ति टिक नहीं सकती है। श्रीमद्भागवत के माहात्म्य में नारद जी ने भक्ति का महत्त्व वर्णन किया –

न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वासुरोऽपि वा ।
भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥

(भा.माहा. २/१७)

नारद जी कहते हैं – जिसके अन्तःकरण में भगवद्भक्ति है – प्रेत, पिशाच, राक्षस, ब्रह्मराक्षस आदि चाहे कितने भी प्रबल असुर क्यों न हों, ये सब भगवद्भक्त को छू भी नहीं सकते अर्थात् भक्त के सामने टिक भी नहीं सकते हैं। भगवद्भक्त में वह शक्ति है कि लाखों-लाखों वर्ष तपस्या करने वाले असुर भी भगवत्शरणागत भक्त का कुछ अनिष्ट नहीं कर सकते हैं। उदाहरणार्थ – जिस लंका में रावण के भय से कोई 'राम नाम' नहीं ले सकता था, उसमें विभीषण भजन करते रहे परन्तु रावण रोक नहीं पाया और जिस समय रावण ने विभीषण का अपमान किया, उसे राज्य से निकाला तो भक्तापराध के कारण उसी समय रावण श्रीहीन, आयुहीन हो गया अर्थात् मृतवत हो गया –

रावन जबहिं बिभीषन त्यागा ।
भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा ॥
अस कहि चला बिभीषनु जबहीं ।
आयूहीन भए सब तबहीं ॥

(रा.मा. सुन्दर. ४२)

यह सिद्धान्त अकाट्य है कि जिस भूमि पर भक्त निवास करता है तब तक उस स्थान का स्वयं भगवान् योगक्षेम धारण करते हैं। इसीलिए असुरों के द्वारा इतने अत्याचार किये जाने पर भी लंका बची रही, उसका कारण था वहाँ भक्त का निवास। जिस समय रावण ने

विभीषण को लात मारकर लंका से निकला, तो उसी समय सारे लंकावासी श्रीहीन, आयुहीन हो गए और उसका परिणाम कुछ समय पश्चात् दिखाई पड़ा, जब सारी लंका नष्ट हो गयी।

भक्ति वह शक्ति है जिसकी हम जैसे लोग कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। हिरण्यकशिपु ने लाखों वर्ष तप किया, उसके आगे ब्रह्मादि त्रिदेव भी नहीं खड़े हो सकते थे और वह भी आश्चर्य से बोला – अरे प्रह्लाद! मेरे क्रोधित होने पर तीनों लोक उनके ईश्वरों सहित कांपते हैं और तू मेरे सामने एक बच्चा होकर निर्भय खड़ा है। उसने आश्चर्य से पूछा – तेरे पास किसका बल है? तूने कोई तप नहीं किया, जप नहीं किया, यज्ञ नहीं किया, अभी एक बच्चा है, तुझमें इतनी शक्ति कैसे आ गयी?

प्रह्लाद सुप्रभावोऽसि किमेतत्ते विचेष्टितम्।
एतन्मन्त्रादिजनितमुताहो सहजं तव॥

(विष्णु. १/१९/२)

प्रह्लाद! तेरा ऐसा प्रभाव कैसे हुआ? तूने क्या साधन किया है? जो तुझमें ऐसा प्रभाव आ गया। ये कैसे आया? तेरे पास कोई मन्त्र सिद्धि है क्या? प्रह्लाद जी ने कहा – हे पिताजी!

न मन्त्रादिकृतं तात न च नैसर्गिको मम।
प्रभाव एषसामान्यो यस्य यस्याच्युतो हृदि॥

(विष्णु. १/१९/४)

मैंने न तो कोई मन्त्र जपा है, न कोई तप किया है, न मेरे में कोई स्वाभाविक शक्ति है। तब उसने पूछा – फिर यह चमत्कार कैसे आया? प्रह्लाद जी बोले – साधारण सी बात है, जिसके हृदय में अच्युत आ गए अर्थात् भगवान् की भक्ति आ गयी, उसके प्रभाव की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है, पर हृदय में अच्युत आना चाहिए।

हम जैसे लोग तो बस बक-बक करते रहते हैं और हृदय में लड्डू-

पेड़ा, पैसा-धेला, विषय-भोग हैं फिर हृदय में भगवान् कहाँ से आ जाएँगे, हृदय में अच्युत होना चाहिए, सांसारिक राग-द्वेष न हों। प्रह्लाद जी कह रहे हैं – क्या करें जीव अपनी कमी को देख नहीं पाता, बेचारा मोहान्ध हो गया है, कहने से भी नहीं देख पाता। जैसे – लोग दिन-रात पढ़ते हैं परन्तु किसी को अपना दोष दिखाई नहीं देता, वैसे ही कुछ तपस्या आदि मत करो, नियम, जप, तप, व्रत की जरूरत नहीं है, बस हृदय में अच्युत को लाओ, इससे अपने-आप समस्त शक्तियाँ तुम्हारे पास आ जाएँगी। अब लौकिक दृष्टि से देखा जाए तो मीराबाई ने कोई तपस्या आदि नहीं की और सारी राज्यशक्ति मिलकर भी मीरा का कुछ नहीं बिगाड़ पायी ***'बार न बाँकौ भयौ गरल अमृत ज्यौं पीयौ।'*** यहाँ तक कि उनको राणा जी ने जहर दिया तो जहर भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाया। यह हृदय में भगवान् को लाने का चमत्कार है। इसलिए हम अपने हृदय को टटोलकर देखें परन्तु वह नहीं देख पाता प्राणी, बस यही एक बड़े दुःख की बात है, इसीलिए आत्मनिरीक्षण के बिना अंधा बना रहता है। सूरदास जी ने लिखा है –

इत-उत देखत जनम गयौ।
या झूठी माया कैं कारन, दुहुँ दृग अंध भयौ॥
जनम-कष्ट तैं मातु दुखित भइ, अति दुख प्रान सह्यौ।
वै त्रिभुवनपति बिसरि गए तोहि, सुमिरत क्यौं न रह्यौ॥
श्रीभागवत सुन्यौ नहिं कबहूँ, बीचहिं भटकि मर्‌यौ।
'सूरदास' कहै, सब जग बूड़्यौ, जुग-जुग भक्त तर्‌यौ॥

हम लोग चले थे घर से भजन करने और बीच में ही भटक गए। ये जो महापुरुषों ने लिखा है, सही लिखा है कि मनुष्य घर से निकलता है लेकिन बीच में भटक जाता है। इसी तरह यह सब संसार भटक के मर रहा है।

चलना-चलना सब कहे बिरला पहुँचे कोय ।
एक कंचन और कामिनी दुर्गम घाटी दोय ॥

भक्ति मार्ग पर कोई-कोई ही चल पाता है, उस रास्ते पर एक दुर्गम घाटी है वह है एक तो धन-दौलत (सुख-सम्पत्ति) और दूसरी सुन्दर स्त्री। इस दुर्गम घाटी को जो पार कर गया वह भक्ति मार्ग पर चल सकता है। इसीलिए भगवान् ने गीता में भी कहा कि घर छोड़कर करोड़ों निकलते हैं लेकिन साधन कोई-कोई ही कर पाता है और उन साधन करने वालों में भी कोई-कोई मुझको प्राप्त कर पाता है।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

(गी. ७/३)

लाखों करोड़ों चलते हैं लेकिन भटक जाते हैं। ऐसे भटक जाते हैं कि जीवन में फिर उत्थान नहीं हो पाता है। इसलिए प्रह्लाद जी ने कहा कि हृदय में अच्युत की जगह टका-पैसा आ गया, कामिनी आ गयी तो तुम्हारे भाग्य में भटकना लिखा है और इसी भटकने में ही सारा संसार लगा है। कोई-कोई भक्त होता है जो संसार सागर से पार हो जाता है। बाकी हम जैसे तो भटकते ही रहते हैं। ये भटकना बंद नहीं होता है।

प्रह्लाद जी ने कहा – अगर कृष्ण हैं हृदय में तो उसकी शक्ति को कोई जान नहीं सकता है। जैसे मीराबाई को भूत महल में बंद कर दिया गया था लेकिन मीरा मरी नहीं बल्कि सब भूतों का उद्धार हो गया। देखो, राम पीछे आते हैं, रावण पहले आ जाता है। कृष्ण पीछे आते हैं, कंस पहले आ जाता है। संत पीछे आते हैं, उनके ईर्ष्यालु, निंदक पहले आ जाते हैं।

संत नामदेव जी थे। जंगल में एक वृक्ष था, उस पर एक ब्रह्मराक्षस रहता था और ब्रह्मराक्षस बड़ा भयंकर होता है, तो नामदेव जी को वहाँ ईर्ष्यालु लोगों ने रात में पानी लेने के लिए भेज दिया। एकादशी का

कीर्तन था, कोई डर के कारण नहीं गया, किसी की हिम्मत नहीं थी, ऐसा भी लोग कहते हैं कि ईर्ष्यालु लोगों ने नामदेव जी को वहीं पर आसन लगवा दिया था कि ये मर जाएँ। आसुरी शक्ति दैवी शक्ति से चिढ़ती है। रात का समय था, नामदेव जी वहाँ गए। वह तो अपना कीर्तन करते थे। महाराष्ट्र में 'पांडुरंग' भगवान् का कीर्तन चलता है, अतः वह कीर्तन करने लगे –

"जय जय पांडुरंग पांडुरंग पांडुरंग हरि ।"

उसी समय वह ब्रह्मराक्षस विकराल रूप धारण करके सामने आ गया, उसका ऐसा विकराल रूप था कि उसका तो दर्शन करके ही आदमी भय के कारण मर जाता था। लेकिन भक्त नहीं डरता है, हम जैसे मूर्ख लोग डरा करते हैं। डरने वाला अपने आप डरके मर जाता है। नामदेव जी तो सबमें भगवान् को देखते थे और सबको भगवान् ही समझते थे। भेद दृष्टि में भय होता है। उन्होंने करताल लेकर के गाना शुरू किया –

ये आये मेरे लम्बक नाथ ।
धरती पांव स्वर्ग लौं माथो योजन भरि भरि हाथ ॥
सिव सनकादिक पार न पावैं तैसेइ सखा विराजत साथ ।
नामदेव प्रभु अन्तर्यामी कीन्यो मोहिं सनाथ ॥

यह उन्हीं का पद है, उस समय उन्हीं ने गाया था। हम जैसे तो डर के मारे मल-मूत्र ही छोड़ दें। लेकिन भक्त तो डरता ही नहीं है। अब नामदेव जी ने कहा – ये तो मेरे प्रभु आ गए, इनका नाम क्या रखें? वंशी तो है नही कि गोपाल जी कह दें, धनुष बाण है नहीं कि राजाराम जी कह दें। आकाश तक शरीर बड़ा लंबा था तो नामदेव जी ने उनका नाम 'लम्बक नाथ' रखा। तो उनका रूप कैसा है? लम्बक नाथ का पाँव तो धरती पर है और सिर का पता नहीं कहाँ है और चार-चार कोस लम्बे हाथ, बड़े-बड़े भयानक नाखून और उस ब्रह्मराक्षस के साथ पूरी

फौज थी। जो उसी की तरह भयानक थी, लेकिन यह तो सबमें भगवद्भाव रखते थे। नामदेव जी बोले – वाह प्रभु! लम्बक नाथ जी महाराज! आपकी महिमा को तो कोई जान ही नहीं सकता है। आपकी महिमा को सनकादि, शिवादि भी नहीं जान सकते। कितना दृढ़ भाव है नामदेव जी का। कहा – प्रभु! आपने दर्शन दिया, हम धन्य हो गए आपका दर्शन पाकर। तब उसी ब्रह्मराक्षस में से भगवान् प्रकट हो गए और नामदेव से बोले – नामदेव! यह तो ब्रह्मराक्षस था, नामदेव बोले – प्रभु! हमें तो पता नहीं, हम तो जानते हैं कि सब आप ही हैं। उस ब्रह्मराक्षस का कल्याण हो गया। भक्त डरे नहीं, अपनी आस्था दृढ़ रखे, सभी में भगवद्भाव रखे तो उसे अवश्य एक दिन भगवद्दर्शन होते हैं।
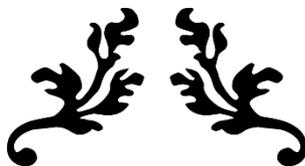
भगवद् आसक्ति में बाधक भोगासक्ति

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग ।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ॥
दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥

(रा.मा. अरण्य. ४६)

कोई जरूरत नहीं वैराग्य की, जप की, कोई जरूरत नहीं योग करने की, केवल भगवान् के गुण-लीलाओं को गाओ। गारन्टी है – भक्ति मिल जायेगी, भवसागर खत्म हो जाएगा। युवती का शरीर दीपशिखा है, उसमें मनुष्य का मन पतंगा की तरह जल जाता है। इसी तरह युवती के लिए समझना चाहिए, पुरुष का संग जला देगा। इसलिए काम का नशा छोड़ दो और निरन्तर सत्संग करो। केवल भगवान् की लीला-गुणों को गाओ, इसी से भवसागर पार हो जाओगे लेकिन काम से सावधान रहना, कहीं जल न जाओ। गोस्वामी जी ने पतंगा क्यों कहा? पुरुष कैसे जलता है? स्त्री कैसे जलती है? इसका उत्तर श्रीमद्भागवत में बताया है –

इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ।
चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥
भ्रश्यत्यनु स्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ।
तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥

(भा. ४/२२/३०,३१)

इन्द्रियों को विषय खींच लेते हैं और इन्द्रियाँ मन को खींच लेती हैं। कितने ही लड़के घर से भाग जाते हैं, कितनी ही लड़कियाँ भाग जाती हैं क्योंकि उनका मन खिंच गया। मन क्या करता है, कैसे जलता है? इसको देखो। मन बुद्धि की चेतना को चुरा लेता है। होश में नहीं रहा, चेतना चली गयी तो बेहोश हो गया। चेतना जाने के बाद स्मृति नहीं

रहती है, याद नहीं रहता कि हम किस घर के हैं, किस वर्ण के हैं, हमारी क्या हैसियत है, स्मृति चली गयी और होश नहीं रहा। स्मृति नष्ट हो गयी तो ज्ञान नष्ट हो गया, ज्ञान नष्ट हो गया तो आत्मनाश हो गया। अब वह आदमी मर गया, चाहे लड़का है, चाहे लड़की है, साधु है, विद्वान् है तो भी मर गया। जहाँ पैसा मिलेगा, वहीं जायेगा, भले ही नाम है रामदास, श्यामदास। जहाँ लड्डू-पेड़ा मिलेगा, वहीं चल देगा क्योंकि ज्ञान नष्ट हो गया, उससे आत्मनाश हो गया। जीव का इससे ज्यादा नाश नहीं हो सकता, न हुआ और न होगा। ज्ञान नष्ट हो गया तो तुम जीते जी मुर्दा हो। विषयों की प्रियता तुमने अपने व्यतिक्रम से पैदा की है, अपनी गड़बड़ी से अध्यास करके –

नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ।
यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥

(भा. ४/२२/३२)

अब जैसे आजकल के लोग यौनशक्ति बढ़ाने के लिए दवाइयाँ खाते हैं, हेरोइन आदि का सेवन करते हैं, क्यों करते हैं? ताकि विषयों में प्रियता पैदा हो जाए। ज्यादा देर विषय भोगेंगे तो पुरुष या स्त्री ज्यादा प्रसन्न होंगे। इस तरह से वे जहर खाते हैं।

मनुष्य ने अपने ही व्यतिक्रम (उल्टे क्रम) से विषयों में प्रीति पैदा की, विषय उड़कर नहीं आये थे; विषयों में प्रियता हमने पैदा की, यह हमारी कमी है। इससे सर्वनाश हो गया –

अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ।
भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद्येनाविशति मुख्यताम् ॥

(भा. ४/२२/३३)

दो चीजें हैं – अर्थ और विषय। हम लोग साधु बनकर पैसे के लिए दौड़ते हैं क्योंकि ज्ञान नष्ट हो गया, उससे सर्वनाश हो गया, सभी प्रकार के पुरुषार्थों का नाश हो गया। अर्थ और इन्द्रियार्थ के पीछे, ज्ञान-विज्ञान सब नष्ट हो गये और परिणाम क्या हुआ? मरने के बाद सबसे

खराब जड़योनि की प्राप्ति। मरकर पेड़ बनेंगे, पहाड़ बनेंगे। लाखों वर्ष तक पहाड़ बनकर खड़े रहेंगे, कष्ट सहेंगे, पेड़ बनकर खड़े रहेंगे।

विषयासक्त मनुष्य पैसा कमाने में लगे रहते हैं या भोग भोगने में लग रहते हैं, जब तक बिल्कुल नीचे नहीं पहुँच जाते, लगे ही रहेंगे, जड़ नहीं बन जायेंगे तब तक रुकेंगे नहीं। हेरोइन खाते हैं और जाने क्या-क्या खाते हैं। इसका मतलब है कि यौनवर्धक दवाइयाँ खाने वाले लोग जड़योनि की ओर जा रहे हैं। ये मरेंगे तो मनुष्य तो बनेंगे नहीं, इनकी गाड़ी जाकर सीधे निकृष्ट योनियों में ही रुकेगी। आदमी सोच रहा है कि हम भजन आज नहीं तो कल कर लेंगे, कल नहीं तो परसों कर लेंगे, लेकिन नहीं तुम्हारी गाड़ी तो सीधे वहीं पहुँचेगी मुख्यता (जड़योनि) पर। इसीलिए गोस्वामी जी ने कहा कि जैसे पतंगा आग में जल जाता है, वैसे ही तुम कामाग्नि में जल जाओगे। इन दोनों 'अर्थ और भोग' को नहीं छोड़ोगे तो जलते रहोगे।

भक्ति का मूल – 'फलाकांक्षा का त्याग'

भगवान् ने गीता में कहा है कि कोई भी यज्ञ करो, फल की आकांक्षा से मत करो, हम लोग शुरू में ही फल की इच्छा कर लेते हैं। फल क्या है? सेब, आम, पपीता आदि ये फल नहीं हैं। सबसे बड़ा फल है कि मनुष्य आत्म-सम्मान चाहता है। चैतन्यमहाप्रभु जी ने कहा था –

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनिजन्मनीश्वरे भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि॥

(शिक्षाष्टक ४)

मान-सम्मान की इच्छा मत करो। आज का हर आदमी २४ घण्टे जो काम करता है, खाता-पीता, उठता-बैठता है सम्मान के हिसाब से। वहीं बैठेगा जहाँ उसके सम्मान की वृद्धि होती है अर्थात् जहाँ उसे सम्मान मिलता है। सभी कर्म उठना-बैठना, खाना-पीना, बोलना-चालना सम्मान छोड़कर करना चाहिए, तब वह कर्म ब्रह्म में अर्पण हो जाता है। हम लोग खाते भी हैं तो सम्मान के लिए, थोड़ा लेते हैं, नहीं तो बदनामी होगी, हिसाब से खावें, लोग देख रहे हैं। अतः हर काम हम लोग सम्मान के लिए करते हैं। गीता में कहा है –

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

(गी. ५/१०)

भगवान् में तुम्हारा कर्म तब समर्पित होगा, जब संग (आसक्ति) – देहासक्ति, गृहासक्ति, अन्तःकरण की अहमासक्ति छोड़कर चलोगे, तब वह कर्म ब्रह्म में अर्पित होगा तब तुमको पाप नहीं लगेगा।

हम जैसे लोगों का हर कर्म मान-सम्मान की रक्षा के लिए होता है। रक्षा ही नहीं बल्कि मान-सम्मान बढ़ाने के लिए होता है। दीनता भी ज्यादा दिखाते हैं, तो वहाँ भी मान-सम्मान की सूक्ष्म इच्छा रहती है कि

लोग समझें बड़ा विनम्र है, बड़ा दीन है। प्रदर्शन की इच्छा रहती है तो वह फल है। जब प्रदर्शन की इच्छा होती है तब कर्म राजस बन जाता है। जो कर्म हम दिखाने के लिए करते हैं, उसका सात्विकपना नष्ट हो जाता है। इसका प्रमाण गीता में है –

अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥

(गी. १७/१२)

'शास्त्र से समझना चाहिए तो दिमाग में पक्का बैठ जाता है।' भगवान् ने कहा – सात्विक तो वह था, जब कोई भी फल की इच्छा नहीं आयी –

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥

(गी. १७/११)

अगर इस दृष्टि से कर्म करते हैं कि करना कर्त्तव्य है, भगवान् की आज्ञा है, तो वह कर्म सात्विक है और फल की इच्छा आयी तो वह राजस हो गया। दम्भ (दिखावा) का भाव आया, उसी से वह कर्म राजस हो गया, सात्विकता खत्म हो गयी और हम लोग दिखाने के लिए ही सब काम करते हैं। कोई आदमी पाँच सौ का नोट चढ़ाता है तो दिखाता है, ताकि सब लोग जान जायें कि यह पाँच सौ रुपये का नोट मैंने चढ़ाया, तब वह पाँच सौ रुपये चढ़ाना राजस हो गया। अगर बिना दम्भ के चुपचाप दस रुपये भी देता तो वह सात्विक था। जिस काम में दम्भ (दिखावा) है, फल की इच्छा है, किसी भी प्रकार की कोई भी इच्छा है तो वह राजस हो गया। वर्तमान काल में समाज में अधिकतर राजस और तामस यज्ञ हो रहे हैं।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥

(गी. १७/१३)

श्रद्धा है ही नहीं तो तामस हो गया। श्रद्धा नहीं है, कैसे पता? अगर श्रद्धा होती तो फल की इच्छा नहीं होती –

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥

(गी. १७/१७)

'श्रद्धा' माने केवल भगवान् की प्राप्ति की इच्छा है। संसार के लिए दिखावा कर रहे हैं तो इसका मतलब है कि हम संसार की आराधना कर रहे हैं, भगवान् की नहीं। धन की इच्छा है तो इसका मतलब कि भगवान् में श्रद्धा नहीं है, भगवान् में प्रेम नहीं है। जहाँ श्रद्धा होगी, वहाँ फल की इच्छा नहीं होगी। फल की इच्छा आयी तो कर्म राजस हो गया।

हमारा मान-सत्कार हो, पूजा हो, समाज में प्रभाव बढ़े, इसके लिए मनुष्य दिखावा करता है, इससे वह यज्ञ राजस हो गया। जैसे माला की झोली इसीलिये बनायी गयी कि हम जप कर रहे हैं, कोई माला न देख ले, लेकिन हम जैसे लोग झोली खड़खड़ाते हैं कि लोग देखें – हम जप कर रहे हैं, हम बड़े भजनानन्दी हैं। उस झोली को भी दम्भ का एक उपकरण बना लेते हैं। दिखावे के लिए आँखों से आँसू बहाते हैं कि लोग देखें – हम बड़े भावुक हैं। घर में रोटी नहीं है खाने को लेकिन बड़ा सूट पहनकर सज-धजकर चलते हैं कि हम बहुत बड़े धनी हैं। इस तरह हमारी आदतें बिगड़ी हुई हैं, हर क्रिया में, हर कर्म में दम्भ घुसा हुआ है, इसलिए हर कर्म राजस बना लेते हैं। कथा कहते हैं तो सोचते हैं कि कथा जमी कि नहीं, जनता पर हमारा प्रभाव पड़ा कि नहीं, सम्मान की ओर तुरन्त ध्यान जाता है। लोगों ने तारीफ किया वाह-वाह तो फूल गये क्योंकि सम्मान की इच्छा थी। लोगों ने ताली बजायी तो खुश हो गये कि जनता ने बड़ी ताली बजायी। ये दिखाता है कि सत्कार की भावनायें हमारे मन में हैं। हम भक्त नहीं हैं। भक्त होते तो –

योो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥

(गी. १२/१७)

किसी ने सम्मान किया लेकिन *'न हृष्यति'* माने भक्त को हर्ष नहीं होता और हमारे सामने 500 का नोट रख दो, तो हम खुश हो जायेंगे क्योंकि हम भक्त नहीं हैं। भक्त को प्रसन्नता नहीं होती है संसारी चीज पाकर। किसी ने अपमान कर दिया तो भक्त उससे द्वेष नहीं करता है। कोई भौतिक वस्तु नष्ट हो गयी तो भक्त शोक नहीं करता है। संसार की किसी भी वस्तु की प्राप्ति की भक्त इच्छा नहीं करता है। ऐसी चीजें याद रखो तो भक्त बन जाओगे।

सच्ची निष्ठा की प्राप्ति

'अनन्य' शब्द भक्ति का मूल है। किसी भी ग्रन्थ को पढ़ें, सभी में यही निरूपण किया गया है कि भगवान् का अनन्य आश्रय ही सबका मूल है। सबसे पहले भगवान् ने गीता में इसी बात की घोषणा की –

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गी. ९/२२)

एक तरह से यह भगवान् की प्रतिज्ञा है, घोषणा है कि तुम जिस समय मेरा अनन्य चिंतन करोगे, तुमको अपने योगक्षेम के बारे में नहीं सोचना पड़ेगा। योगक्षेम मैं स्वयं ढोऊँगा मजदूर बनकर।

ये निष्ठा कब प्राप्त होती है? जब अनर्थ हट जाते हैं तब भक्ति की पाँचवी सीढ़ी 'निष्ठा' की प्राप्ति होती है। इसके पहले कभी भी मनुष्य का पतन हो सकता है। जब तक अनर्थ बने रहेंगे तब तक निष्ठा की प्राप्ति नहीं होगी, चाहे कोई कितना भी जप कर ले, तप कर ले, सेवा कर ले। पहली सीढ़ी है श्रद्धा, दूसरी सीढ़ी है साधु संग। श्रद्धा वाला ही साधु-संतों, भक्तों का संग करता है। श्रद्धा नहीं है तो साधुओं के पास नहीं जायेगा, जायेगा भी तो बिना श्रद्धा के कोई फायदा नहीं होगा। तीसरी सीढ़ी है भजन क्रिया। कोई शुद्ध साधु होगा तो सीधी तौर पर भजन क्रिया बतायेगा, अहैतुकी भजन क्रिया बतायेगा। अहैतुकी भक्ति क्या है? इसका निरूपण श्रीमद्भागवत में किया गया है –

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥

(भा. ३/२९/१२)

निर्गुणा भक्ति ही शुद्ध भक्ति है जिसमें सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण का मिश्रण नहीं होता। वह अहैतुकी भक्ति होती है, उसमें कोई हेतु नहीं

होता, न राजस हेतु, न तामस हेतु और न ही सात्विक हेतु। अगर ये हेतु आ गए तो निर्गुणा भक्ति नहीं रही। तामस हेतु क्या है? अधिकतर समाज में तामस हेतु ही चल रहा है –

अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥

(भा. ३/२९/८)

हिंसा, मात्सर्य व दम्भ ये तीन चीजें भक्ति को तामस कर देती हैं। अधिकांशतया मनुष्य जहाँ भी जिस सम्प्रदाय अथवा जिस गुरु के पास जाता है, वहाँ उसे हमलोग यही सिखाते हैं कि हमारा प्रचार करो, चाहे दंभ से करो। हर सम्प्रदाय में हर आचार्य यही सिखाता है। इसके लिए हिंसा सिखाता है, हिंसा अर्थात् दूसरे की कमियों को बताना, दूसरों की आलोचना करना, दूसरों का यश नष्ट करना और अपने को भक्त, रसिक घोषित करना, इस प्रकार मात्सर्य (द्वेष) सिखाता है। इस तरह से यह पहली शिक्षा ही मनुष्य को तामस बना देती है और आजकल समाज में यही हो रहा है। चाहे कितना भी ऊँचा संत है, महापुरुष है, आचार्य है, सम्प्रदाय है, वहाँ पर पहली चीज यही सिखाई जाती है कि प्रचार करो, उसके लिए चाहे दम्भ दिखावा ही क्यों न करना पड़े। बिना दम्भ (दिखावा) के प्रचार नहीं होता, आजकल ज्यादातर आचार्यों, गुरुओं या सम्प्रदायों द्वारा हिंसा सिखायी जाती है कि जो कुछ रस है, भक्ति है वह केवल हमारे यहाँ ही है, अन्यत्र कहीं पर तुमको हमारे यहाँ जैसी विशेषता नहीं मिलेगी। दूसरे का यश नष्ट करना, यह हिंसा है। मात्सर्य भी सिखाया जाता है। मात्सर्य अर्थात् होड़ करना। इन सब हेतुओं से भक्ति तामस हो जाती है। मान लो, अगर कोई तामस भक्ति से बचा तो हम लोग ही उसको राजस भक्ति सिखाते हैं। राजस भक्ति में विषय, यश, ऐश्वर्य की कामना रहती है –

विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा ।
अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥

(भा. ३/२९/९)

विषय माने केवल स्त्री ही नहीं होती। सबसे बड़ा विषय है – अहंता-ममता। 'मैं पन' और 'मेरापन' यही अहंता-ममता है, पहले 'मैं पन' आता है, फिर 'मेरापन' आता है। 'एकादशं स्वीकरणं ममेति' जो चीज हमारी नहीं उसे अपना मानना यही ममता है। हम आचार्य हैं, हम रसिक हैं, हम गुरु हैं, ये अहंता है, इसी 'अहंता' के कारण 'ममता' पैदा होती है कि हमारे इतने शिष्य हैं, हमारे इतने अनुयायी हैं। अतः 'अहंता-ममता' को हम लोग छोड़ नहीं पाते और इसके छोड़े बिना भगवान् कभी नहीं मिलेंगे –

यत्सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहमित्यूढदुराग्रहाणाम् ।
पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन् पदाब्जम् ॥

(भा. ३/५/४३)

यह हमारा घर है, यह हमारे बेटा-बेटी हैं, यह मेरा पति है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पैसा है; यह सब 'मम्' बुद्धि है। बाप का एकाउन्ट अलग होता है, बेटे का अलग। इस तरह 'ममाहम् बुद्धि' घर-घर है। साधु समाज में भी है। तो यह 'ममाहम् बुद्धि' दुराग्रह है, ऐसे लोगों के लिए भगवान् बहुत दूर हैं। इस पुरी (शरीर) में रहते हुए भी भगवान् सुदूर अर्थात् इतनी दूरी पर हैं कि हम समझ नहीं सकते। इसलिए राजस भक्ति में विषय 'अहंता-ममता' भी है, यश तथा ऐश्वर्य (प्रभुता) की कामना भी है। ऐश्वर्य में आदमी चाहता है कि सब लोग हमारी बात मानें। इस प्रकार तामस भक्ति से छूटे तो राजस भक्ति हो गयी और राजस भक्ति से छूटे तो सात्विक भक्ति हो गयी। सात्विक भक्ति क्या है? हमारे कर्म भगवान् को अर्पण हो जायें, हमारा मोक्ष हो जाये, यह है सात्विक भक्ति –

कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम् ।
यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्त्विकः ॥

(भा. ३/२९/१०)

दिन-रात लोग इसी बात पर लड़ते हैं कि हमारा ही भोग भगवान् को अर्पण हो, हमारी सेवा स्वीकार हो जाये। ये सब सात्विक हेतु हैं। तुलसीदास जी ने रामायण में कहा – 'मैं और मेरा' यही माया है।

मैं अरु मोर तोर तैं माया । जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥

(रा.मा. अरण्य. १५)

माया की इतने संक्षिप्त शब्दों में परिभाषा किसी भी ग्रन्थ में नहीं है, जैसा कि गोस्वामी जी ने लिखा है। 'मैं' और 'मेरापन' जब तक जीवित है तब तक तुम्हारे भीतर माया है। जब 'मैं पन' जीवित है तो 'मेरापन' जीवित रहेगा। 'मैं' है – 'अहंता' और 'मेरापन' है उसकी बेटी 'ममता'; इन सब हेतुओं से छूटकर भक्ति की जाये, ऐसा संसार में कहीं नहीं है। इसलिए निर्गुणा भक्ति का भी कहीं दर्शन नहीं होता। निर्गुणा भक्ति 'अहैतुकी' अर्थात् सभी प्रकार के हेतुओं को छोड़कर होती है –

लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥

(भा. ३/२९/१२)

भक्ति करो किन्तु किसी हेतु को लेकर मत करो। हम लोग आश्रम बनाते हैं तो सोचते हैं कि आश्रम का खर्च कैसे चले? इसके लिए शिष्यों को, अपने अनुयायियों को सिखाते हैं कि चन्दा करके, दान लेकर धन इकट्ठा करो, धन लाओ। तब शिष्य भी समझता है कि गुरु जी ठीक कह रहे हैं, वह धन अपने लिए तो माँग नहीं रहे, धन नहीं आयेगा तो आश्रम का खर्च कैसे चलेगा? भले ही गुरूजी अपने लिए धन नहीं माँग रहे हैं, आश्रम के लिए माँग रहे हैं लेकिन इससे भगवान् का आश्रय तो छूट जाता है। कहीं भी धन माँगने जाओगे तो वह अन्याश्रय होगा। साधाराण आदमी इस तथ्य को नहीं समझ सकता कि भगवान् का

आश्रय कैसे नष्ट हो जाता है। या तो फिर इतना बेपरवाह हो जाये कि आश्रम का खर्च चले अथवा नहीं चले, अन्याश्रय नहीं करेंगे। भागवत में भी यही कहा कि धर्म के लिए भी धन की इच्छा मत करो तथा अपनी जीवन यात्रा के लिए भी मत सोचो कि क्या खायेंगे? कैसे हमारा निर्वाह होगा...आदि के लिए भी धन की इच्छा नहीं करो –

धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाधनो धनम् ।
अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा ॥

(भा. ७/१५/१५)

यदि तुम गरीब हो, भोजन के लिए भी नहीं है कुछ तुम्हारे पास, फिर भी तुम हिम्मत करो, धन की कामना मत करो। इसे 'अनीहा' वृत्ति कहते हैं। जब यह 'अनीहा' तुम्हारे हृदय में आ जायेगी तो तुम्हारा जीवन निर्वाह अपने आप होगा लेकिन हम लोगों में इतनी हिम्मत नहीं है। इसलिए चन्दा करते हैं, donation (दान) माँगते हैं और कहते हैं कि हम अपने लिए यह सब नहीं कर रहे हैं, समाज कल्याण के लिए, धर्म के लिए कर रहे हैं किन्तु इस श्लोक में स्पष्ट निर्देश है कि धर्म के लिए भी धन की कामना मत करो। ऐसी शिक्षा वर्तमान समाज में कहीं नहीं है। ऐसा संत आजकल कहीं नहीं मिलता, इसलिए अनर्थ निवृत्ति नहीं होती।

अनर्थ नहीं दूर होते क्योंकि सही भजन क्रिया नहीं होती, क्यों नहीं होती? क्योंकि 'सही साधु' नहीं मिला। 'सही साधु' क्या होता है? वह हम जैसे लोगों से पृथक होता है।

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही ।
चितवहिं राम कृपा करि जेही ॥

(रा.मा. उत्तर. ६९)

संत तो सभी बनते हैं लेकिन एक होता है विशुद्ध संत, जिसके पास न सात्विक हेतु है, न राजस हेतु है और न ही तामस हेतु है। संसार में आजकल तामस हेतु बहुत मिलते हैं। दूसरों की आलोचना करना,

दूसरों का यश नष्ट करना – यह तामस हेतु है। समाज में अधिकांशतया यही दिखायी देता है। साधु समाज में यही चर्चा मिलती है कि रामदास ऐसा है, श्यामदास वैसा है, परस्पर एक दूसरे की आलोचना ही दृष्टिगोचर होती है। यह जीव को तामस बना देती है, भक्ति तो बहुत पीछे की बात है। भागवत धर्म (भक्ति) की शुरुआत तभी होगी जब निर्मत्सर बनोगे, नहीं तो चाहे साधु बनो, संत बनो कुछ नहीं होगा। श्रीमद्भागवत में सर्वप्रथम इसी का निरूपण किया गया है –

'धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां'

(भा. १/१/२)

इस भागवत धर्म की प्राप्ति तभी होगी जब निर्मत्सर हो जाओगे। आजकल समाज में मात्सर्य हर कदम पर दिखाई देता है। एक बार हमसे सिद्ध सन्त ग्वारिया बाबा के शिष्य किशोरीलाल गोस्वामी जी ने कहा था कि साधुसंग मत करना, यह सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ, हमने पूछा कि बिना साधु संग के तो भक्ति नहीं आती, तो उन्होंने कहा कि वर्तमान काल में पहले जैसे शुद्ध साधु तो बहुत कम हैं, अधिकांशतया साधु समाज में कहीं भी जाओ तो वहाँ शुद्ध भगवद्चर्चा तो कहीं नहीं मिलती, परस्पर एक दूसरे की निंदा और भण्डारे आदि की चर्चा ही सुनायी पड़ती है। हमने साधु समाज में जाकर देखा तो यही पाया कि कहीं प्रेम की भाषा (भक्ति युक्त चर्चा) नहीं है, एक दूसरे की आलोचना ही दिखाई पड़ती है।

जब तक मेरा-तेरापन नष्ट नहीं होता, तब तक भगवान् बहुत दूर हैं। यह मेरी कुटिया, यह तेरी कुटिया, यह मेरा सम्प्रदाय, यह तेरा सम्प्रदाय – ये सब माया है। जो इस झगड़े से दूर है, उस पर भगवान् की कृपा है। इन्हीं सब कारणों से 'अहैतुकी भक्ति' अत्यन्त कठिन है, कठिन इसलिए है क्योंकि कहीं भी इसकी व्यवहारिक शिक्षा नहीं दी जाती। कहीं ऐसा संत नहीं मिलता जो सात्त्विक, राजस और तामस हेतुओं से छूटकर अहैतुकी भक्ति का आचरण करता है और समाज को,

अपने अनुयायियों को उसी के अनुसार आचरण कराता है; इसलिए अनर्थ-निवृत्ति नहीं होती, अनर्थ विद्यमान रहते हैं और बिना अनर्थ निवृत्ति के भक्ति की पाँचवीं सीढ़ी 'निष्ठा' की प्राप्ति नहीं होती। 'निष्ठा' का अर्थ है – गड़ जाना (अच्छी तरह से स्थित हो जाना), जब निष्ठा आ गयी फिर मनुष्य गिरता नहीं है क्योंकि अनर्थ सब नष्ट हो गये। अनर्थ ही गिराता है। अनर्थ क्या है? जहाँ पर अर्थ जड़ सहित समाप्त हो गये, वह है अनर्थ।

विश्वनाथ चक्रवर्तीपाद ने लिखा है कि चार प्रकार के अनर्थ होते हैं –

१. सुकृतजात अनर्थ २. दुष्कृतजात अनर्थ ३. भक्तिजात अनर्थ ४. अपराधजनित अनर्थ।

'सुकृतजात अनर्थ' – धन दान करेंगे, इससे पुण्य होगा, स्वर्ग मिलेगा, यह सुकृतजात अनर्थ है। 'दुष्कृत जात अनर्थ' – पाप करना, भोग भोगना आदि ये दुष्कृत जात अनर्थ है। 'भक्ति जात अनर्थ' – ऐसा सोचना कि हम बहुत महान भक्त हैं, हम बहुत ऊँचे रसिक हैं, यह भक्तिजात अनर्थ है, जो आज समाज में बहुत अधिक है। 'अपराधजनित अनर्थ' – नामापराध करना, भक्तों का अपराध करना, यह अपराधजनित अनर्थ है। 'भक्तापराध' सब अनर्थों में सबसे प्रमुख है, इसलिए इस अनर्थ से विशेष सावधानी पूर्वक बचना चाहिए। जब सब प्रकार के अनर्थ समाप्त हो जाते हैं, तब मनुष्य को 'निष्ठा' की प्राप्ति होती है।

कष्ट का मूल – 'मैं - मेरापन'

भय (डर) क्यों लगता है? क्योंकि हमने भगवान् को अपना नहीं माना है। घर को अपना मान लिया, ईंट-पत्थर का घर, उसको अपना मान लिया। धन-सम्पत्ति को अपना मान लिया। इसलिए भय लगता है कि कहीं पैसा न खर्च हो जाये, चोरी न हो जाये।

तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ।
तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥

(भा. ३/९/६)

तुमने धन को अपना मान लिया, बस यही गलत आदत है। धन तो एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा, अभी नहीं छोड़ोगे तो मरने के बाद छोड़ना पड़ेगा। पारिवारिक सम्बन्धों में मेरापन कर लिया, मेरी माँ, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरा परिवार – यह मेरापन ही कष्ट का मूल है। मेरापन के कारण ही शोक होता है, दुःख होता है, स्पृहा (इच्छा) होती है, पराजय होती है – इस संसार की किसी वस्तु को तुम अपना मानोगे तो पराजय होगी, लोभ होगा। सांसारिक किसी भी सम्बन्ध में मेरापन है – मेरी माँ है, मेरा पिता है, मेरा भाई है, मेरा पुत्र-पुत्री है – यह केवल झूठा हठ है। अगर सोचते हो कि यह मेरी स्त्री है तो क्या वह मरेगी नहीं, क्या तुम्हारे साथ जायेगी? मेरापन जहाँ भी है, उसके कारण केवल कष्ट मिलेगा। जिस समय मनुष्य भगवान् को अपना मान लेता है, उस समय ये सारी समस्याएँ समाप्त हो जाती हैं। संसार में मेरापन समाप्त हो जाता है। न मेरा बेटा रहा, न मेरी बेटी रही, न मेरी स्त्री, न मेरा घर, न मेरी जमीन-जायदाद रही, न मेरा शरीर – ये मेरेपन का सब विकार समाप्त हो जाता है। एकमात्र भगवान् ही मेरे हैं, यही सत्य है, जैसे मीराबाई ने कहा था मेरे तो एकमात्र श्रीकृष्ण हैं और न माँ मेरी है, न बाप मेरा है, न भाई-बन्धु मेरे हैं, इस संसार में कोई भी मेरा नहीं है –

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई ॥

संसार की कोई भी वस्तु, प्राणी हमारा नहीं है। एक दिन हर चीज छूटेगी। लेकिन फिर भी मनुष्य ममता करता है, उसकी ममता नहीं छूटती है –

ममता तू न गई मेरे मन तें ॥
पाके केस जनमके साथी, लाज गई लोकनतें ।
तन थाके कर कंपन लागे, ज्योति गई नैननतें ॥
सरवन बचन न सुनत काहुके बल गये सब इंद्रिनतें ।
टूटे दसन बचन नहिं आवत सोभा गई मुखनतें ॥
कफ पित बात कंठपर बैठे सुतहिं बुलावत करतें ।
भाई-बंधु सब परम पियारे नारि निकारत घरतें ॥
जैसे ससि-मंडल बिच स्याही छुटै न कोटि जतनतें ।
'तुलसिदास' बलि जाऊँ चरनते लोभ पराये धनतें ॥

एक दिन ऐसा आयेगा कि हर चीज छूटेगी। माँ-बाप, स्त्री, बेटा-बेटी सब छूटेंगे। क्या कोई किसी के साथ सर्वदा रहा? तुलसीदास जी कहते हैं कि तू नीच मनुष्य है, इन छूटने वालों को अभी से क्यों नहीं छोड़ देता? मनुष्य यह मेरेपन की आदत नहीं छोड़ता। जैसे अनादिकाल से वर्षा हो रही है लेकिन चन्द्रमा का काला धब्बा आज तक नहीं मिटा, उसी प्रकार ममता भी आज तक नहीं छूट सकी, जीव का लाखों बार जन्म-मरण हुआ, कभी कुतिया बना, कुतिया पिल्ले को अपना मानती रही कि यह मेरा है, बन्दरिया अपने छोटे बच्चे के लिए लड़ाई-झगड़ा करती है। यह ममता की वृत्ति चौरासी लाख योनियों में है अनादिकाल से। श्रीमद्भागवत में भी कहा गया है –

नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ।
नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥

(भा. ३/३०/५)

नरक में रहने वाला जीव नारकीय योनियों में भी सुखी रहता है। एक मल के कीड़े को मल से अलग किया जाये तो तड़पता है क्योंकि उसके लिए मल ही वैकुण्ठ है, हर जीव अनन्त कष्ट पाता है लेकिन उस नरक को, नारकीय पदार्थों को छोड़ नहीं पाता है। छोड़ने की इच्छा भी नहीं करता। नरक के कष्टों में भी वह आनन्द का अनुभव करता है। यह ऐसी मोहमयी माया है कि –

सौ सौ जूता खायें, तमाशा घुसके देखेंगे ।
जब तक सिर सलामत है, तमाशा घुसके देखेंगे ॥

एक गृहासक्त मनुष्य के सिर पर रोज सौ-सौ जूते पड़ते हैं। स्त्री अलग लड़ती है, बेटा-बेटी अलग लड़ते हैं लेकिन उसका मोह नहीं छूटता। गर्भवास करते समय जीव को अत्यधिक दारुण कष्ट सहना पड़ता है। गर्भ के भीतर छोटे-छोटे हजारों कीड़े होते हैं, वे जीव को काटते रहते हैं किन्तु वह न तो हाथ-पाँव हिला सकता है, न खुजा सकता है ***'जनमत मरत दुसह दुख होई ।'*** जन्म-मरण के समय जीव को अनन्त कष्ट भोगना पड़ता है। गर्भ के बाहर तो कोई पीड़ा होने पर हम दूसरे को बता सकते हैं, इलाज करा सकते हैं लेकिन गर्भ के भीतर प्राणी कुछ नहीं कर सकता। सूरदास जी ने कहा है –

तुम प्रभु, मोसों बहुत करी ।
नर-देही दीनी सुमिरन कौं, मो पापी तैं कछु न सरी ॥
गरभ-बास अति त्रास, अधोमुख, तहाँ न मेरी सुधि बिसरी ।
पावक जठर जरन नहिं दीन्हौ, कंचन-सी मम देह करी ॥
जग मैं जनमि पाप बहु कीन्हे, आदि-अंत लौं सब बिगरी ।
'सूर' पतित, तुम पतित उधारन, अपने बिरद की लाज धरी ॥

गर्भ के भीतर बच्चा नीचे सिर किये लटका रहता है, उसका सिर

मल-मूत्र में गड़ा रहता है और उसके पास में जठराग्नि जलती रहती है। जठराग्नि सभी प्रकार के भोजन को पचा देती है। २४ घंटे जठराग्नि जलती रहती है लेकिन भगवान् जीव को उससे जलने नहीं देते, उसकी रक्षा करते हैं और सोने जैसी काया बनाकर गर्भ से जीव को सुरक्षित बाहर निकाल देते हैं। लेकिन गर्भ के बाहर आते ही मनुष्य पाप परायण हो जाता है, भोग परायण हो जाता है। सूरदास जी कहते हैं – हमने तो आदि से अंत तक अपना विनाश ही किया। मनुष्य जन्म के बाद भी फिर से मल-मूत्र के अर्थात् भोगों के परायण हो गए। जिस मल-मूत्र के गर्भ से मनुष्य निकलता है, बाहर आकर फिर से मल-मूत्र के मैथुनी भोग में संलग्न होकर पुनः उसी गर्भाशय में घुसने का कार्य करता है। महाराज बलि ने अपने पितामह प्रह्लाद जी को स्मरण करते हुए कहा कि धन्य हैं मेरे बाबा जी, वह बचपन में मुझे गोद में लेकर समझाया करते थे, शिक्षा देते थे इसीलिए मुझमें त्याग आ गया। संसार में ऐसे माता-पिता का मिलना दुर्लभ है। बलि कहते हैं – हमारे बाबा प्रह्लाद जी समझाते थे –

किमात्मनानेन जहाति योऽन्ततः
किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ।
किं जायया संसृतिहेतुभूतया
मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥

(भा. ८/२२/९)

अपने शरीर से प्रेम मत करना, यह शरीर एक दिन तुमको छोड़ देगा। इस शरीर को चाहे कितना भी बढ़िया भोजन खिलाओ, दूध पिलाओ, सुन्दर वस्त्र और अलंकारों से सुसज्जित कर लो, कितना ही इसे भोग भुगाओ लेकिन यह अन्त में तुम्हारा साथ छोड़ देगा, नष्ट हो जायेगा। इसलिए शरीर से प्रेम मत करना। इसके अतिरिक्त बेटा-बेटी, स्त्री आदि ये सब डाकू हैं। सब कमाया हुआ धन ले लेते हैं। ले क्या लेते हैं, मनुष्य स्वयं ही उन्हें दे देता है। डाकू बन्दूक की नोक पर धन

लूटता है और ये बेटा-बेटी हँसकर मनुष्य का धन लूट लेते हैं। इस प्रकार ये स्वजन-सम्बन्धी, पुत्रादि केवल डाकू हैं, इनसे प्रेम मत करना, ये दस्यु तुम्हारा सब कुछ लूट लेंगे। आदमी तरसता है कि हमारे संतान हो जाये, क्यों तरसता है? क्योंकि उसका भगवान् से प्रेम नहीं है, चाहता है कि हमारे घर डाकू पैदा हो जाये। जीवन भर उनके लिए कमाओ, खिलाओ और अन्त में वे सब धन ले लेते हैं, इसीलिये उन्हें डाकू कहा गया है। ये स्वजन नहीं हैं, डाकू हैं। अतः प्रह्लाद जी ने कहा कि इन डाकुओं से कभी प्रेम मत करना। स्त्री क्या है? वह तो मुसीबत की जड़ है। स्त्री ही संसार चक्र में फँसने का हेतु है। मनुष्य जिस गर्भाशय से निकला है, स्त्री के भोग परायण होकर फिर से उसी गर्भाशय में प्रवेश करता है। बार-बार उसी गर्भाशय में प्रवेश करता और बाहर निकलता रहता है। घर बना लेने पर मनुष्य बड़ा प्रसन्न होता है कि हमने अपना घर बना लिया जबकि घर तो आयु समाप्त करने की एक गुफा है, जैसे चूहा एक बिल में सारा जीवन व्यतीत कर लेता है। मेंढक एक कुएँ में सारा जीवन बिता लेता है, जैसे गन्दे नालों में करोड़ों कीड़े पैदा होते हैं, वे उसी में खाते-पीते, लड़ते-झगड़ते हैं, सन्तान उत्पन्न करते हैं और उसी में मर जाते हैं, इसी प्रकार मनुष्य भी घर बनाकर अपनी सारी आयु उसी में बिताकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

वैज्ञानिकों ने गहन अनुसन्धान करके बताया है कि सृष्टि अनंत है, अगणित आकाशगंगाएँ हैं, एक आकाशगंगा में अनन्त सूर्य, अनन्त ब्रह्माण्ड हैं लेकिन इतनी खोज करने के बाद भी इस नश्वर जगत् से किसी की आसक्ति नहीं हटती, कोई भी इस संसार से मुक्ति नहीं प्राप्त करना चाहता है। अनन्त संसार है। एक चौपाई में गोस्वामी जी ने इसका वर्णन किया है –

'रोम रोम प्रति लागहिं कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥'

(रा.मा. बाल. २०१)

अनन्त ब्रह्माण्ड में फँसे जीव को इससे छूटने की इच्छा नहीं होती।

डॉक्टर लोग प्रतिदिन मरीजों का ऑपरेशन करते हैं, देखते हैं कि शरीर में मल-मूत्र, हाड़-मांस ही भरा है, भीतर की विकृतियों को प्रतिदिन वे देखा करते हैं परन्तु शरीर के इतने दूषण को देखकर भी आज तक किसी डॉक्टर को वैराग्य नहीं हुआ, शरीर के भीतर बारह प्रकार के मल हैं। हर मनुष्य के रोम-रोम में मल भरा है। शौच के समय मनुष्य प्रतिदिन अपने मल-मूत्र को देखता है लेकिन उसे इस गंदे शरीर से वैराग्य नहीं होता।

वसा शुक्रमसृङ्ग मज्जा मूत्र विड् घ्राणकर्णविट् ।
श्लेष्माऽश्रु दूषिका श्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥

(मनुस्मृति ५/१३५)

वसा, शुक्र, रक्त, मज्जा, मूत्र, मल, नाक का मल, कान का मल, कफ, जुआँ, पसीना, आँसू आदि ये सब मल ही शरीर के रूप में हैं। ऐसे मलों से भरे शरीर से जीव की आसक्ति नहीं हटती, यही भगवान् की विचित्र माया है।

श्रेष्ठता का आधार – भगवद्भक्ति

जाति प्रथा के विरोध में वैष्णव धर्म खड़ा हुआ। वैष्णव धर्म ने एक क्रान्ति मचा दी और उसमें कहा गया कि भगवान् का नाम सारे संसार को पवित्र कर सकता है तो चाण्डाल क्या चीज है? भगवन्नाम में वह शक्ति है कि जिसके प्रभाव से –

नाम जपत कोढ़ी भला चुइ-चुइ पड़ै जो चाम।
कंचन देह किस काम की जा मुख नाहिन राम॥

चाण्डाल से नीची जाति कोई नहीं है, अस्पृश्य कहा गया, छूना तो दूर उसे देखना भी पाप समझा जाता है लेकिन वैष्णव धर्म में कहा कि वह चाण्डाल भी श्रेष्ठ है जो भगवद्प्रेम में नामोच्चारण करता है –

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान् यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम्।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते॥

(भा. ३/३३/७)

जिसकी जिह्वा पर भगवन्नाम आ गया, जिसने भगवान् का नाम ले लिया, उसने सारी तपस्याओं को कर लिया, *'जुहुवुः'* सारे यज्ञ कर लिए; *'सस्नुः'* सभी तीर्थों में स्नान कर लिया, *'आर्याः'* सभी सदाचरण कर लिये। पूर्व जन्म में कितना भी पाप किया हो लेकिन भगवन्नाम की ऐसी महिमा है – यह नाम साक्षात् ब्रह्म है, जिसने भगवन्नाम लिया वह सब यज्ञ कर चुका, सभी तीर्थों में स्नान कर चुका, सभी उसने व्रत कर लिये, सभी सदाचार कर लिये।

श्रुतिप्रज्ञ जी नाम के एक भक्त आज से कई सौ साल पहले हुए हैं, जब बड़ी कट्टर जाति प्रथा थी। एक बार की बात है – श्रुतिप्रज्ञ जी ने देखा कि एक चाण्डाल जगन्नाथ जी के मन्दिर से महाप्रसाद लेकर आ रहा है। चाण्डाल ने श्रुतिप्रज्ञ जी को देखा और चरणों में गिरकर प्रणाम किया, उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे कि भगवान् का दर्शन हो

गया। 'भक्तदर्शन' माने भगवान् का दर्शन हो गया। उसके भक्तिभाव को समझकर श्रुतिप्रज्ञ जी ने उठाकर उसे गले से लगा लिया। वह घबड़ाया कि मैं तो अस्पृश्य हूँ, छूने लायक नहीं हूँ। श्रुतिप्रज्ञ जी भक्त थे, भक्ति का रहस्य जानने वाले थे, इन्होंने अपने कपड़े से जो उसके शरीर में धूल लग गयी थी साष्टांग दण्डवत करने के कारण, उसको झाड़ने लगे और बोले – 'भैया चाण्डाल जी! तुम हमसे श्रेष्ठ हो क्योंकि मैं अभी दर्शन करने जा रहा हूँ, तुम दर्शन करके आये हो और भगवान् का महाप्रसाद भी पा लिया है तुमने।'

प्रह्लाद जी ने डंके की चोट पर कहा है –

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभ-
पादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ।
मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थ
प्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥

(भा. ७/९/१०)

बारह गुण जिस ब्राह्मण में हैं, ऐसा ब्राह्मण पहले तो मिलता नहीं है लेकिन अगर मिल भी गया और उसमें तपस्या आदि श्रेष्ठ बारह गुण हैं लेकिन भगवान् की भक्ति नहीं है, ऐसे ब्राह्मण से भक्त चाण्डाल श्रेष्ठ है, क्योंकि ऐसा भक्त चाण्डाल जिसकी हर क्रिया भगवान् के लिए है, जिसका मन भगवान् के लिए है, वाणी भगवान् के लिए है, वाणी से केवल भगवन्नाम बोलता है, जितनी क्रियाएँ-चेष्टाएँ वो भगवान् के लिए हैं, अर्थ (पैसा) भगवान् के लिए है, सब कुछ जिसने भगवान् को अर्पण कर दिया, वह स्वयं को ही नहीं, बल्कि अपने कुल को भी तार देता है; लेकिन भक्तिहीन ब्राह्मण अपना भी उद्धार नहीं कर सकता क्योंकि उसमें मान, अहं है। 'अहं' से गंदा कुछ नहीं है। रावण जैसा कोई पण्डित नहीं हुआ लेकिन 'अहं' के कारण वह 'असुर' बोला गया।

'भक्त का दर्शन' भगवान् के दर्शन से बड़ा होता है। स्वयं भगवान् ने कहा – हमारे भक्त को भोजन करा दो, हमें भोग लगाने से वह ज्यादा

बड़ा है, भक्तों के नाम का कीर्तन करो, वह हमारे नाम-कीर्तन से बड़ा है। भक्तों की पूजा करो, वह हमारी पूजा से बड़ी है।

षष्ठिवर्ष सहस्राणी विष्णोराराधनं फलम् ।
सकृद्वैष्णव पूजायां लभते नात्र संशयः ॥

साठ हजार वर्ष तक कोई भगवान् की पूजा करे और भक्त की पूजा एक बार कर ले, तो साठ हजार वर्ष तक विष्णु की पूजा से बड़ी है 'एक बार भक्त की पूजा करना'। इसलिए यह कहा गया कि भगवान् के कीर्तन से बड़ा है 'भक्त का कीर्तन'। इसलिए सम्प्रदायों में 'आचार्य-नाम-कीर्तन' चलाया गया –

गौड़ीय सम्प्रदाय

"श्री कृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्दा ।
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्दा ॥"

वल्लभ सम्प्रदाय

"श्री वल्लभ विट्ठल गिरधारी ।
श्री जमुना माँ की बलिहारी ॥"

राधावल्लभ सम्प्रदाय

"राधावल्लभ श्री हरिवंश श्री वृन्दावन श्री वनचन्द्र ॥"

हरिदासी सम्प्रदाय

"कुञ्जबिहारी श्री हरिदास वीठल विपुल विहारिन दास ॥"

हर सम्प्रदाय में 'आचार्य-भक्तों का नाम-संकीर्तन' इसीलिए चलाया गया क्योंकि भगवान् ने कहा – मेरे कीर्तन से सौ गुना बड़ा है 'भक्तों के नाम का कीर्तन' लेकिन जब उसमें संकीर्ण भाव आ जाता है। नाम में भेदभाव रखना माया है, नामापराध है। यह भेदभाव इतना है कि मान

मंदिर से संचालित 'राधारानी वार्षिक ब्रजयात्रा' में पहले गौड़ीय लोग आते थे, वे युगल मन्त्र का कीर्तन नहीं करते थे केवल महामंत्र करते थे। धीरे-धीरे वह कट्टरता कम हो गयी, अब तो वे युगल मन्त्र बोलने लगे हैं। मनुष्य जब संकीर्ण लोगों का संग करता है तो संकीर्ण बन जाता है। 'भक्तों का नाम' भगवान् के नाम से बड़ा है, यज्ञ करने से भी बड़ा है। भगवान् ने स्वयं कहा कि यज्ञ में जो घी की आहुति दी जाती है प्रज्वलित अग्नि में, उससे उतना मैं तृप्त नहीं होता हूँ, जितना कि भक्तों के मुख में डालने से।

नाहं तथाद्मि यजमानहविर्विताने
श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन ।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं
तुष्टस्य मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥

(भा. ३/१६/८)

ऐसा भक्त जो अपने निजकर्मपाक से संतुष्ट है, यानी भक्त है, केवल जाति की बात नहीं है। ब्रह्मा जी ने भागवत में यही बात कही कि जो भक्त होता है, वह निजकर्मपाक, विपाक, जो भगवद्विधान है, उसमें संतुष्ट रहता है, दुखी नहीं रहता।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् ।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥

(भा. १०/१४/८)

जो भी अपना कर्मफल मिला है सुख-दुःख, अमीरी-गरीबी, उसको प्रेम से भोगता है, उपासना नहीं छोड़ता है, वह अवश्य संसार से छूट जाता है। हम संसारी लोग दुःख में रोते हैं और सांसारिक सुखों में प्रसन्न होते हैं। रुपया मिल गया, खुश हो गये, भोग मिल गया खुश हो गये, सोचते हैं भगवान् की बड़ी कृपा है क्योंकि बुद्धिहीन प्राणी हैं। भगवान् की कृपा भोगप्राप्ति को समझ लिया है अज्ञान से हम लोगों ने, वो भक्त नहीं है संसारी है। इसलिए (भागवत ३/१६/८) भगवान् कहते

हैं कि यज्ञ किया तुमने और तमाम घी की आहुतियाँ दिया लेकिन जो भक्त अपने कर्मपाक से संतुष्ट है, उसकी सेवा नहीं की तो तुम्हारा 'घी की आहुतियों का यज्ञ' व्यर्थ है।

भगवान् ने अपनी इच्छा से दुःख दिया तो भी ठीक है, सुख मिला तो भी ठीक है, पैसा नष्ट हो जाए तो दुखी नहीं होता, प्रतिकूल परिस्थितियाँ आईं तो दुखी नहीं होता, वह श्रेष्ठ भक्त है, वह अपनी उपासना नहीं छोड़ता है, कुछ भी हो जाए। 'नमस्कार' यानी उपासना करता है – हृदय से, वाणी से, शरीर से। जो भी उसके कर्म में लिखा है 'सुख-दुःख' वह आता है-जाता है लेकिन वह उपासना नहीं छोड़ता है। जैसे बाप की संपत्ति बेटे को मिलेगी, वैसे ही जो उपासक है वह उपासना नहीं छोड़ता है, वह भगवान् की संपत्ति का अधिकारी (दायभाक) हो जाता है और जिसने सांसारिक सुखों में या दुःखों में उपासना छोड़ दिया, वह दायभाक नहीं है। बीमार हो फिर भी उपासना नहीं छोड़नी चाहिए। उपासना छोड़ने वाला नुक्सान में रहता है, वह संसार में दुःखी रहेगा, परमार्थ में तो दुःखी है ही। इसलिए भगवन्नाम लेने वाला चाण्डाल भी पवित्र है, श्रेष्ठ है, बड़ा है। भगवन्नाम लेने वाला सोमयज्ञ का अधिकारी बन जाता है –

यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद् यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित् ।
श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥

(भा. ३/३३/६)

भगवन्नाम का कीर्तन करने से, सुनने से, भगवान् को नमस्कार करने से, स्मरण से, चाण्डाल भी 'सद्यः' उसी समय यज्ञ करने का अधिकारी हो जाता है। भगवन्नाम लेने वाला उसी समय यज्ञ का अधिकारी हो जाता है। भगवन्नाम की महिमा हम जैसे मूर्ख लोग कैसे जान सकते हैं? भगवन्नाम की महिमा ब्रह्मा, शंकर, नारद, प्रह्लाद आदि ये सब लोग जानते हैं –

नाम प्रभाउ जान सिव नीको ।
कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥

(रा.मा.बाल. १९)

भगवन्नाम के प्रभाव से 'कालकूट' विष जो तीनों लोकों को जला रहा था, वह शंकर के लिए अमृत बन गया।

अतः चाण्डाल ने श्रुतिप्रज्ञ जी को देखा तो साक्षात् भगवान् मानकर दण्डवत् प्रणाम किया, भाव-निमग्न हो प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। भक्त का दर्शन भगवान् के दर्शन से बड़ा है। हरिराम व्यास जी ने लिखा है –

साँचे मंदिर हरि के संत ।
जिहि मे मोहन सदा विराजत तिनहिं न छोड़त अन्त ॥
जिनि महँ रुचिकर भोग भोगवत पाँचौ स्वाद वदन्त ।
जिन महँ बोलत हँसत कृपा करि चितवत नैन सुपन्त ॥

लोग समझते हैं – इस मंदिर में चलो, ये बड़ा नामी सिद्ध मंदिर है, लेकिन व्यास जी कहते हैं – सच्चे मंदिर तो भगवान् के भक्त हैं। भगवान् को भोग लगाओगे, भगवान् कुछ नहीं कहेगा कि खीर में मीठा कम है, लेकिन संत भगवान् तुरन्त कह देंगे कि मीठा कम है भाई। इसलिए व्यास जी बोले – ऐसे भगवान् की उपासना करो जो बोलता है-चालता है। मंदिर का भगवान् न बोलेगा, न चालेगा। इस बात को स्वयं भगवान् ने कहा है कि –

नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका
न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः ।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्यघं
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ॥

(भा. १०/८४/१२)

एक बार जब कुरुक्षेत्र में सूर्य ग्रहण के समय भारतवर्ष के सभी

ऋषि-मुनि एकत्रित हुए थे, वहाँ भगवान् ने सबके बीच में यह बात कही थी – अग्नि उपासना (यज्ञ करो), सूर्य उपासना (गायत्री मन्त्र जपो), ज्योतिष उपासना, पृथ्वी की उपासना, जल उपासना (तीर्थों में स्नान करो), वेदों में प्रतीकोपासना बतायी गयी है, इनसे मनुष्य शुद्ध नहीं होगा। 'विपश्चित' माने विद्वान् भक्त के पास मुहूर्त (क्षण) भर के लिए बैठ जाओ, मनुष्य शुद्ध हो जाएगा लेकिन भक्तों में हम जैसे लोगों का भाव नहीं होता है, क्यों? इसके चार कारण हैं –

यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।
यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचिज्जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

(भा. १०/८४/१३)

'शरीर' में आत्मबुद्धि है कि यही आत्मा है (देह बुद्धि है), ऐसा आदमी भक्तों की महिमा को नहीं जान सकता क्योंकि देहाभिमान लेके उनके पास जाएगा तो वहाँ भी दोषदृष्टि रखेगा, यह पहला कारण है। दूसरा कारण है – स्त्री, पुत्रादि में ममता होना, स्त्री ने कह दिया – नहीं, सत्संग आदि कुछ नहीं करना है, चलो, तो उठना पड़ेगा। तीसरा कारण है – *'भौम इज्यधीः'* मूर्तियों में भगवद्बुद्धि रखना। जब भगवद्भक्त मिल गया तो भौम वस्तुओं को भी छोड़ दो। चौथा कारण है – *'यत्तीर्थबुद्धि सलिले'* अर्थात् पानी में तीर्थबुद्धि करना, हरिद्वार चलें, गंगा जी चलें। पानी में तीर्थबुद्धि करने वालों का भी भक्तों में भाव नहीं होता है। भगवान् ने बहुत कठोर वचन कहे कि ये लोग गधे हैं, जो भक्तों को छोड़कर इधर-उधर पूज्य बुद्धि रखते हैं। भगवान् ने यह भाषण दिया कुरुक्षेत्र में, ऋषियों के बीच में।

मैं अरु मोर तोर तैं माया

सच्चा भक्त सांसारिक सुख नहीं चाहता है। श्रीमद्भागवत में कुन्ती माता ने भगवान् से विपत्तियों का वरदान माँगा –

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥

(भा. १/८/२५)

विपत्ति जो चाहता है, वही सच्चा भक्त है; जो भोग चाहता है, सुख चाहता है, वह भक्त नहीं है, वह बनिया है। प्रहलाद जी ने कहा कि जो संसारी सुख चाहता है वह भक्त नहीं, बनिया (दुकानदार) है। विदुर जी ने अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र को फटकारा; उनकी फटकार से उन्होंने गृह त्याग कर दिया, जंगल चले गये। विदुर ने यह नहीं सोचा कि भाई अन्धे हैं, कहाँ जियेंगे, कहाँ मरेंगे? कहीं भी मरो, भगवान् के आश्रय में मरो।

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः ।
अविज्ञातगतिर्जह्यात् स वै धीर उदाहृतः ॥

(भा. १/१३/२५)

उसी का नाम भक्त है जो भगवान् के आश्रय में रहता है। जाओ-ऐसी जगह मरो, जहाँ कोई पानी देने वाला भी न हो। जो संसारी सुख चाहता है, वह बनिया है –

आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ।
न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥

(भा. ७/१०/५)

भक्त बनो, बनिया नहीं बनो। जो सुख की आशा करता है, वह भगवान् का दास नहीं है, वह बनिया है। वह स्वामी, स्वामी नहीं जो सेवक से सुख की इच्छा रखता है, स्वार्थ रखता है कि हमारी सेवा करो। वह माँ-बाप नहीं जो बेटा-बेटी से सुख की इच्छा करते हैं।

कठिनाइयाँ सामने आती हैं, उनसे लड़ना चाहिए, इसी का नाम भक्ति है। हम लोग शारीरिक सुख चाहते हैं, भक्त नहीं हैं। भगवान् का सबसे बड़ा प्यार यही है कि जीव में अहं न पैदा हो जाए।

अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः ।
वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥

(भा. ३/२५/१६)

'अहं' पैदा हुआ और काम, क्रोध पैदा हो जाएँगे। मैं लड़का हूँ, मैं लड़की हूँ, मैं सुन्दर हूँ, ये सब बातें शरीर के कारण पैदा होती हैं (देह बुद्धि होने से अहं का उदय होता है)। 'ममाहम्' चला गया, काम-क्रोध चले जाएँगे, कभी नहीं आएँगे, उसको दुःख-सुख कुछ नहीं होगा; यह ज्ञान कपिल भगवान् ने अपनी माँ को दिया था। उन्होंने कहा – माताजी! सुख-दुःख क्यों होता है? अहंता-ममता के कारण से। फूट क्यों पड़ती है? अहंता-ममता के कारण से। मैं अलग हूँ, यह हमसे अलग है, इसका शरीर हमसे अलग है; जहाँ यह भाव आया, वहाँ काम, क्रोध, लोभ, मोह, फूट सब पैदा हो जाएँगे। असुविधा, सुविधा यह मन का भेद है, जब अहंता-ममता चली जाती है तब असुविधा नहीं होती है। असुविधा तभी होती है – जब यह भाव हो कि यह छोटा है, यह गैर है, दूसरे कुल का है। मनुष्य अपनी कमी न सोचकर, दूसरे की कमी सोचता है – ममाहम् मति के कारण। हमारे ऊपर भगवान् की दया है या नहीं, इसका थर्मामीटर ब्रह्मा जी ने बताया है –

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नैषां ममाहमिति धीः श्वश्रृगालभक्ष्ये ॥

(भा. २/७/४२)

जिस पर भगवान् की दया हो चुकी है यानी सब पर दया नहीं होती है, तो क्या भगवान् पक्षपाती हैं? नहीं, दया तभी होगी जब तुम

निष्कपट भाव से आश्रय लोगे, तब उनकी कृपा होगी, नहीं तो नहीं होगी। कृपा हो गयी, इसकी पहचान क्या है? इसकी पहचान है कि माया पार कर लोगे, देवमाया पार कर जाता है जीव, कृपा से पार होता है, साधु बनने से, भिक्षा माँगने से, वैराग्य करने से पार नहीं होता। उसका लक्षण क्या है? यह गन्दा शरीर, जब मरेगा तो इसको कुत्ते खाएँगे, सियार खाएँगे, ऐसे गन्दे शरीर में 'ममाहं बुद्धि' नहीं होती है। इस शरीर की कीमत क्या है? ब्रह्मा जी ने कहा – यह कुत्तों और गीदड़ों का भोजन है। ऐसे गन्दे शरीर में अहंभाव – मैं शरीर हूँ, यह मेरा शरीर है, यह दोनों बातें हट जाती हैं, जब दोनों बातें हट गयीं तो मान-सम्मान प्राप्त करने की भावना कभी नहीं आती है मन में। जब मेरा-तेरा की माया खत्म हो गयी, उसी को भक्त कहते हैं। यह कृपा का थर्मामीटर है। यह नहीं कि हम घर छोड़ आये हैं, हमने ब्याह नहीं कराया, भोग नहीं भोगे, लेकिन अपने मन में ऊँचापन का अभिमान – हम सन्त हैं, विरक्त हैं, साधु हैं; ये सब गलत बातें हैं। इसके माने तुम पर कृपा नहीं है भगवान् की, इसके माने तुमने माया पार नहीं किया, इसके माने तुमने भगवान् की शरणागति नहीं ली है, शरीर की शरणागति है। कुत्ते, सियारों का भोजन – मल-मूत्रमय गन्दा शरीर, जिसकी दो पैसे भी कीमत नहीं है, जिसको हमलोग सजाते हैं, सँवारते हैं, गहना पहनते हैं, क्रीम-पाउडर लगाते हैं। ऐसे साधु बनने से क्या होता है?

जब नारद जी ने पूछा ब्रह्मा जी से – पिताजी! सर्वभाव से शरणागति कब होगी, यह तो बड़ा कठिन है, ऐसी शरणागति कैसे मिलती है?

ब्रह्मा जी बोले – नहीं बेटा, उसका भी रास्ता हम बताते हैं, किस मार्केट में, किस दुकान पर यह माल मिलेगा। बहुत आसान है माया पार करना।

ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ।

यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षा-
स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥

(भा. २/७/४६)

भगवान् की शक्ति माया है, उसको ज्ञानी, महात्मा, योगी, तपस्वी जन बिल्कुल पार कर जाते हैं, जान जाते हैं लेकिन उससे भी बड़ी बात है कि जो स्त्री, शूद्र, हूण, आदि पाप-योनियाँ हैं वे लोग भी माया पार कर जाते हैं। फिर पाप तो सभी जीव कर रहे हैं, किसी का भी आजतक उद्धार नहीं हुआ। बोले – इसलिए नहीं हुआ कि भगवान् की शरण में नहीं हैं, निष्कपट शरणागति नहीं है। क्यों नहीं है? क्योंकि उनको भक्त संग नहीं मिला। जो भगवान् के परायण भक्त लोग हैं उनके पास जाओ और उनसे शील की शिक्षा लो। कैसे बैठें? कैसे चलें? कैसे बोलें? तो भक्तों का संग मिल जाए और उनकी शील- शिक्षा मिल जाए। यह नहीं हो कि कहा – पूरब चलो, लेकिन पश्चिम चल रहे हैं। इतना तुमको करना पड़ेगा – शील गुण सीखो वहाँ जाकर के। फूट, कलह यह सब नहीं हो। भक्तों की शील-शिक्षा अर्थात् दैन्य, सेवा, यही सिखाया भगवान् ने। गीता में कहा –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥

(गी. १२/१३)

सबसे बड़ी बीमारी है – द्वेष, सब प्राणियों में द्वेष छोड़ दो। सबमें मित्रता का भाव रखो इससे मेरा-तेरा करना बंद हो जाएगा। किसी चीज को अपना मत समझो, यह हमारा साथी है, हमारा मित्र है। ममता जहाँ आएगी, वहाँ जरूर राग-द्वेष पैदा होगा। ममता में दोष है –

ममता तरुन तमी अँधिआरी । राग द्वेष उलूक सुखकारी ॥

(रा.मा.सुन्द. ४७)

ममता काली रात है, इसके २ लड़के पैदा होते हैं – एक राग, एक द्वेष। जैसे किसी माँ की ममता अपने बेटे में है, उस बेटे में उसका राग

होगा और उस बेटे से चिढ़ने वालों में द्वेष हो जाएगा। इसको समझो, राग-द्वेष कैसे पैदा होता है? जहाँ ममता होगी, वहाँ राग-द्वेष जरूर पैदा होगा, ये दोनों बेटे हैं ममता के। यह हमारे गाँव का है, हमारे परिवार का है, हमारापन जहाँ है, वहाँ राग पैदा होगा। यह हमारा चाचा है, यह हमारा ताऊ है, हमारा बेटा, हमारी स्त्री, यह राग है। उससे चिढ़ने वालों में द्वेष हो जाएगा। हमने देखा है – घरों में स्त्रियाँ लड़ती हैं। तेरे बेटा के पास दो जोड़ी कपड़ा, मेरे बेटा के पास एक जोड़ी। जहाँ ममता है वहाँ राग-द्वेष जरूर पैदा होगा। यह कभी हो ही नहीं सकता कि राग-द्वेष न पैदा हो, ये 'राग-द्वेष' रूपी दो उल्लू हैं। इसीलिए भगवान् ने कहा कि जब मनुष्य ममता छोड़ देता है, तभी उसे ब्रह्म सुख मिलता है। जब तक ममता है, तब तक राग-द्वेष नहीं मिटेगा, ब्रह्म सुख नहीं मिलेगा। जब तक तुम द्वेष नहीं छोड़ोगे, तब तक अनेक बाधाएँ लगी रहेंगी तुमको। ममता तुम्हारी गलत जगह हो गयी है। 'अपनी तारीफ़ करना' अपना नाश करना है। हमलोग अपनी तारीफ करते हैं कि 'हम द्वेष नहीं करते, द्वेष तो दूसरा करता है।' दूसरों का दोष देखना, यह नीचता है। ब्रह्म लोक तक चले जाओ, सपने में भी तुम्हें सुख नहीं मिलेगा। जब तक मनुष्य कामनाओं को छोड़कर भगवान् का भजन नहीं करेगा, दुःख नहीं दूर होगा। हम लोग साधु बन गये, लेकिन पैसा-धेला, लड्डू आदि की कामनाएँ हमको साधु बनने के बाद भी नष्ट कर देती हैं। जितने दुष्ट विकार हैं – लोभ, मोह, ईर्ष्या, मद, मान आदि ये तभी तक रहते हैं, जब तक जीव भगवान् की शरण में नहीं जाता। भगवान् को छोड़ने से मनुष्य संसार में ममता करेगा। ब्याह कर लेगा तो ऐसा भाव करेगा कि यह हमारी बेटी है, यह हमारी स्त्री है, इससे अन्धकार में जाएगा और वहाँ राग-द्वेष पैदा होंगे। चार पैसे में भी अगर कोई ममता करता है तो भगवान् से दूर है। संसार में कहीं भी ममता है तो भगवान् से दूर है। भजन तो बहुत से लोग करते हैं, लेकिन आसक्ति बनाये रखते हैं – यह मेरा घर है, यह मेरी बेटी है, मेरी बहू है। अपने मान-सम्मान की सोचना आत्मपात है, पतन है। कहीं भी आसक्ति करोगे – स्त्री, पुत्र, पति, धन-

सम्पत्ति आदि में, तो वह आसक्ति आत्मपात है, तुम्हारा पतन है। अगर हमने सोचा – यह घर हमारा है तो ये आत्मपात है, भगवान् से दूर हो गये। यही सबसे पहला उपदेश भागवत में शुकदेव जी ने दिया –

"तं सत्यमानंदनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद् यत आत्मपातः ॥"

(भा. २/१/३९)

आत्मपात करने वाले सांसारिक-सम्बन्धों से आसक्ति हटाकर सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् में या उनके भक्तों में आसक्ति करो, यही सच्चा भजन है।

त्रिताप दमन का उपाय – गुण विप्रमुक्त-भगवद्गुणगान

भगवान् की शरण में जाने पर काल कुछ नहीं कर सकता। 'कलयति इति कालः' काल सबको भक्षण कर जाता है किन्तु जो भगवान् की शरण में जाता है, उस पर काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। काल का वेग तो बड़ा प्रचण्ड है, यह चारों ओर दौड़ रहा है – आकाश में, जल में, थल में। किसी भी समय में किसी भी स्थान में काल का प्रभाव नहीं टूटता किन्तु उससे डरकर जो भगवान् की शरण में चला जाता है तो भगवान् उसकी रक्षा अवश्य करते हैं। जिनके भय से मृत्यु भी भागती है उसी की शरण में जाना चाहिए। लेकिन शरण में जाना कठिन है, जब तक संसार की आसक्ति है तब तक भगवान् की शरण नहीं मिल सकती। शरण तो सब कुछ छोड़ने के बाद मिलती है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

(गी. १८/६६)

इस तरह अगर तुम भगवान् की शरण में चले जाओगे तो काल तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। जो सत्य वस्तु को सोचता है, मिथ्या बातों को नहीं सोचता है, उसको भगवान् की शरण मिल जाती है। निर्मल मन वाला बहुत जल्दी भगवान् को प्राप्त कर लेता है और मनुष्य मन में विषयों को सोचता है तो भगवान् नहीं मिलते हैं। हम मन में सोचते हैं लड्डू मिल जाए, सोचने से लड्डू तो मिलता नहीं और भगवान् दूर चले जाते हैं। ब्रह्मा जी ने कहा है इस बात को कि मेरा मन सदा भगवान् में ही रहता है क्योंकि – हे नारद, मेरा मन कभी संसार में नहीं जाता, मन में हमारे उत्कंठा है –

न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते
न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ।
न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे
यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥

(भा. २/६/३३)

भगवान् से मिलने का बड़ा सरल रास्ता है, हमलोग कर नहीं पाते। एक श्लोक भी अगर सच्चाई के साथ पालन हो जाए तो भगवान् मिल जाएँ लेकिन एक श्लोक का भी पालन नहीं हो पाता। हम लोग गप्प मारते हैं, फालतू बात करते हैं, विषय वार्ताएँ करते हैं इससे वाणी नष्ट हो जाती है। हमलोग मन से झूठी बातों का चिन्तन करते हैं। अच्छा भोजन मिल जाए। लड्डू, कचौड़ी, भोग या विषय चिन्तन करते हैं और सोचने से न लड्डू-कचौड़ी मिलते हैं, न विषय-भोग। सोचने से मन की शक्ति नष्ट हो जाती है। ब्रह्मा जी कहते हैं – मेरी इन्द्रियाँ असत्पथ पर नहीं जाती हैं, आँख, कान, नाक आदि ये सब इन्द्रियाँ संसार को नहीं देखती हैं क्योंकि हमारे मन में कृष्ण से मिलने की उत्कंठा है। जिसको उत्कंठा नहीं है, वह मित्र बनाता है, गप्प मारता है। लोग गाँवों में हुक्का पीते हैं, बैठे रहते हैं, दो-दो घंटे बातें करते हैं। जीवन नष्ट हो जाता है। बचपन से अगर ऐसी आदत बना ली जाए तो माया पार। वाणी से असत्य बात मत करो, घरों में माँ-बाप, बेटा, परिवार के लोग संसारी बातें करते रहते हैं। नहीं तो भगवान् का मिलना बड़ा आसान है। लोग अपने-अपने घरों में बैठकर गप्प मारते रहते हैं, लेकिन कोई बैठकर भजन नहीं कर सकता। कथा हो रही हो तो कथा में नहीं आ सकते। भगवान् तब मिलेगा, जब सत्यस्वरुप भगवान् के परायण हो जाओगे। सत्य का आश्रय करोगे तब सभी सिद्धियाँ अपने आप आ जायेंगी। हमने देखा – जो लोग भगवान् के परायण हैं, उनकी सेवा लोग भगवान् की तरह करते हैं। जितनी मात्रा में मनुष्य भजन करता है, उतनी मात्रा में सिद्धियाँ भी आ जाती हैं। जो भजन नहीं करते, उनके बेटा-बेटी उनको सुख नहीं देते, कष्ट देते हैं। सत्य का आश्रय लेने वाले को सारी

सिद्धियाँ अपने आप आ जाती हैं। शरीर के कष्ट भी भजन से दूर हो जाते हैं –

शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ।
भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥

(भा. ३/२२/३७)

शारीरिक कष्ट, मानसिक कष्ट, प्राणियों के द्वारा दिए कष्ट, देवताओं द्वारा दिए कष्ट आदि भगवान् का आश्रय लेने पर नहीं सताते हैं। मनुष्य कष्ट क्यों पाता है?

ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा ।
मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा ॥

(रा.मा. उत्तर. ७९)

कागभुशुण्डि जी कहते हैं – गरुड़ जी ! बिना भजन के शरीर के कष्ट-क्लेश दूर नहीं होते हैं। ये सब सिद्धान्त मन्त्र हैं, इनसे जीवन में कभी कष्ट नहीं पाओगे। भजन के प्रभाव से पंच महाभूतों के कष्ट भी भाग जाते हैं। कोई कष्ट पा रहा है तो दवाई करने की नहीं, भजन करने की सोचो। भागवत में कहा है –

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह
नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।
तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्ट-
स्तावद् विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥

(भा. ७/९/१९)

प्रह्लाद जी कहते हैं कि बीमार पड़ गये हो तो दवा मत लो, भजन करने की सोचो। समुद्र में डूब रहे हो तो नाव से काम नहीं चलेगा। कष्ट आवे तो भजन की सोचो, संकट (आपत्ति-विपत्ति) आवे तो भजन की सोचो। प्रह्लाद जी कहते हैं – बालको ! माँ-बाप तुम्हारी शरण नहीं हैं। बीमार के लिए दवा शरण नहीं है। समुद्र में डूबते हुए को नाव शरण नहीं

है। इस तरह से संसार में जितने भी पाप-ताप हैं, वे सब भगवान् की शरण में जाने पर नष्ट हो जाते हैं।

भक्त चाहे या न चाहे फिर भी सब सिद्धियाँ उसके पास आ जाती हैं लेकिन राग-द्वेष वाले के पास सिद्धियाँ नहीं आती हैं। 'एक-दूसरे को देखकर चिढ़ना, कुढ़ना, निन्दा करना, बुराई करना, नुक्सान सोचना' आदि अवगुणों से युक्त मनुष्य को कभी सिद्धि नहीं मिलती है।

प्रह्लाद जी से लोगों ने पूछा कि तुझे मारने का इतना प्रयास किया गया लेकिन तू मरता नहीं है, आग में जलाया गया लेकिन तू जलता नहीं है, क्यों?

सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया
लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ।
अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन्गुणविप्रमुक्तो
दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥

(भा. ७/९/१८)

प्रह्लाद जी ने कहा – भगवान् सबसे ज्यादा सुहृद हैं, मैं उनकी लीला-कथाओं का गान करता हूँ जिनकी लीला-कथाओं का गान ब्रह्मा, शंकर आदि भी करते हैं। उससे क्या होता है? कष्टों, विपत्तियों से सरलता से पार हो जाता हूँ, अग्नि में जलाने से नहीं जलता हूँ, पानी में डुबाने से नहीं डूबता हूँ, जहर देने से नहीं मरता हूँ जबकि इन सब कठिनाइयों का पार पाना कठिन है लेकिन मैं सहज में उनको पार कर जाता हूँ। शंका हुई कि गाते तो सब हैं, हर मंदिर में पुजारी आरती करता है फिर उन पर विपत्तियाँ क्यों आती हैं? इसका उत्तर है कि हमलोग गुण धर्मों से युक्त होकर गाते हैं जबकि प्रह्लाद जी कहते हैं कि मैं गुणधर्म से छूटकर गाता हूँ। गुणधर्म क्या है?

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

(गी. ३/३७)

गुणधर्म हैं – राग-द्वेष, इनसे छूटकर यदि तुम भजन करोगे, तब यह चमत्कार आएगा, नहीं तो रामदास, श्यामदास से चिढ़ता है। रामदास कहता है – श्यामदास बड़ा बदमाश है, श्यामदास कहता है – रामदास दुष्ट है। ऐसे भजन नहीं होता है। यह तो आदमी अपना नाश कर रहा है। ऊपर से माला फेरता है और भीतर से नुक्सान चाहता है। "श्यामदास गिर पड़ा, बोले – अच्छा हुआ। रामदास बड़ा ढोंगी था, अच्छा हुआ पिटा" तो यह कोई भजन नहीं है। गुणधर्मों से छूटकर भजन करो, तब तुम सब कष्टों को पार कर जाओगे।

राधे किशोरी दया करो

हे किशोरी राधारानी ! आप मेरे ऊपर दया करिये। इस जगत में मुझसे अधिक दीन-हीन कोई नहीं है अतः आप अपने सहज करुण स्वभाव से मेरे ऊपर भी तनिक दया दृष्टि कीजिये।

राधे किशोरी दया करो ।
हम से दीन न कोई जग में, बान दया की तनक ढरो ।
सदा ढरी दीनन पै श्यामा, यह विश्वास जो मनहि खरो ।
विषम विषय विष ज्वाल माल में, विविध ताप तापनि जु जरो ।
दीनन हित अवतरी जगत में, दीनपालिनी हिय विचरो ।
दास तुम्हारो आस और (विषय) की, हरो विमुख गति को झगरो ।
कबहुँ तो करुणा करोगी श्यामा, यही आस ते द्वार पर्‍यो ॥

मेरे मन में यह सच्चा विश्वास है कि श्यामा जू सदा से दीनों पर दया करती आई हैं। मैं अनादिकाल से माया के विषम विष रूपी विषयों की ज्वालाओं से उत्पन्न अनेक प्रकार के तापों की आग में जलता आया हूँ। इस जगत में आपका अवतार दीनों के कल्याण के लिए हुआ है। हे दीनों का पालन करने वाली श्री राधे ! कृपा करके आप मेरे हृदय में निवास कीजिये । मैं आपका दास होकर भी संसार के विषयों और विषयी प्राणियों से सुख पाने की आशा किया करता हूँ। आप मेरी इस विमुखता के क्लेश का हरण कर लीजिए। हे श्यामा जू ! जीवन में कभी तो ऐसा अवसर आएगा जब आप मेरे ऊपर करुणा करेंगीं, इसी आशा के बल पर मैंने आपके द्वार पर डेरा जमा लिया है।
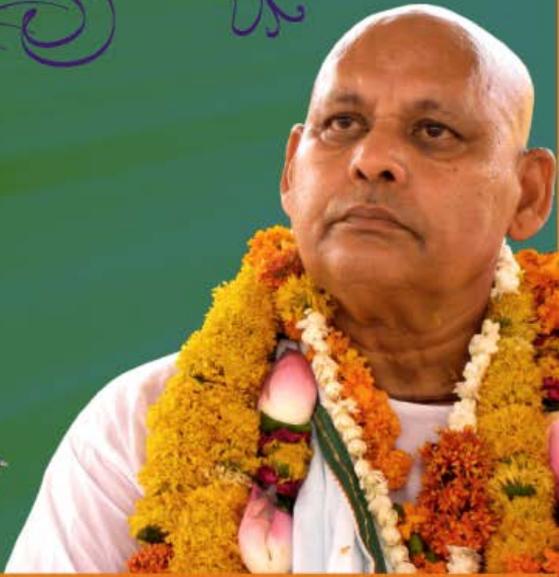
"महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्किंचनानां न वृणीत यावत्।।"

सच्चे निष्किंचन महापुरुषों की शरणागति के बिना स्वभाव भगवान् की ओर कभी नहीं जाएगा, क्योंकि स्वभाव तो हमारा विषय-भोगों में फँसा हुआ है।

Tel.: +91-99273 38666, 98376 79558, 99271 94000